

इकाई-4: पाठ्यचर्या की रूपरेखा: विद्यालयीन शिक्षा नीतियाँ

संरचना

डॉ.आर.एस.पाण्डेय

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 पाठ्यचर्या का अर्थ

4.4 पाठ्यचर्या और पाठ्यवस्तु

4.5 विद्यालयीन पाठ्यचर्या की रूपरेखा का विश्लेषण

4.5.1 राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 1975 का विश्लेषण।

- शिक्षा केलक्ष्य एवं उद्देश्य
- शैक्षणिक नीतियाँ
- पाठ्यवस्तु संगठन
- आंकलन के तौर तरीके
- भाषा नीतियाँ

4.5.2 राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 1988 का विश्लेषण।

- शिक्षा केलक्ष्य एवं उद्देश्य
- शैक्षणिक नीतियाँ
- पाठ्यवस्तु संगठन
- आंकलन के तौर तरीके
- भाषा नीतियाँ

4.5.3 राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2000 का विश्लेषण।

- शिक्षा केलक्ष्य एवं उद्देश्य
- शैक्षणिक नीतियाँ
- पाठ्यवस्तु संगठन
- आंकलन के तौर तरीके
- भाषा नीतियाँ

4.5.4 राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 का विश्लेषण।

- शिक्षा केलक्ष्य एवं उद्देश्य
- शैक्षणिक नीतियाँ
- पाठ्यवस्तु संगठन
- आंकलन के तौर तरीके
- भाषा नीतियाँ

4.6 सारांश

4.7 अभ्यास कार्य

4.8 चर्चा के बिन्दु

4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.1 प्रस्तावना

गाँधी जी ने कहा था कि बच्चे को परिवर्तित होते सामाजिक परिदृश्य का एक अंग बनाने के लिए उसके आस-पास के वातावरण का एक साधन के रूप में उपयोग किया जाए जिससे प्रत्येक बच्चा अपनी योग्यता व सम्भावनाओं की तलाश कर सके और दूसरे के साथ विश्व के पुनर्निर्माण के लिए काम कर सके।

स्वतंत्रता के बाद शिक्षा संबंधी सरोकरों को माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) तथा शिक्षा आयोग (1964-66) द्वारा मुखरित किया गया है।

शिक्षा आयोग (1964-66) द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन की प्रारंभिक पंक्तियों में कहा गया था कि 'भारत के भविष्य का निर्माण उसके कक्षा-कक्षों में हो रहा है।' वस्तुतः किसी भी राष्ट्र का भविष्य उसके द्वारा अपने भावी नागरिकों को दी जाने वाली शिक्षा-दिक्षा तथा संस्कारों पर ही प्रमुख रूप से निर्भर करता है। जो राष्ट्र अपनी भावी पीढ़ी को उच्च गुणवत्ता की शिक्षा उपलब्ध कराता है, उसे उच्च आदर्शों व संस्कारों से परिपूर्ण करता है एवं त्याग व जनहित के लिये तैयार रहना सिखाता है वही राष्ट्र प्रगति के उच्चतम शिखर पर आसीन होता है एवं वैश्विक स्तर पर प्रतिष्ठा अर्जित करता है।

शिक्षा आयोग ने अपने प्रतिवेदन में तत्कालीन पाठ्यक्रम की कटु शब्दों में आलोचना करते हुए कहा था कि यह पाठ्यक्रम संकुचित, कृत्रिम, पुस्तकीय, सैद्धान्तिक तथा विषयों की भरमार से युक्त है तथा रटन्त, स्मरण शक्ति पर अधिक बल देता है। आयोग ने स्कूल पाठ्यक्रम का प्रारूप भी तैयार किया था।

शिक्षा के दोनों आयोग ने बदले हुए सामाजिक राजनैतिक सन्दर्भ में राष्ट्रीय विकास पर विशेष बल देते हुए गाँधीजी के शिक्षा दर्शन के मुख्य बिन्दुओं को विस्तार दिया।

शिक्षा आयोग की अनुशंसा पर भारत सरकार ने 1968 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की। स्कूल स्तर पर पाठ्यक्रम सुधार के लिए भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय ने सन् 1973 में एक पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति का गठन किया गया। इस समिति का सन् 1974 में विस्तार किया गया। इस समिति ने पाठ्यक्रम सुधार के लिए एक दिशा-पत्र (Approach Paper) तैयार किया जिस पर दिल्ली में 1975 में आयोजित राष्ट्रीय पाठ्यक्रम सम्मेलन पर विचार किया गया। तदुपरान्त राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) ने सन् 1975 में **"The Curriculum for the Ten Year School: A Frame Work"** नामक दस्तावेज प्रकाशित किया। इस दस्तावेज में पाठ्यक्रम को स्कूल के द्वारा छात्रों को प्रदान किये जाने वाले समस्त शैक्षिक अनुभवों का सावधानीपूर्वक तैयार किया गया समुच्चय बताया तथा स्पष्ट किया कि पाठ्यक्रम को स्तर विशेष या कक्षा विशेष की शिक्षा के सामान्य उद्देश्यों, विषयगत शिक्षण उद्देश्यों, अध्ययन के कोर्स व समय आबंटन, शिक्षण-अधिगम

अनुभवों, शिक्षण सामग्री तथा अधिगम परिणामों के मूल्यांकन व छात्रों, अध्यापकों व अभिभावकों के पृष्ठ पोषण से सम्बन्धित होना चाहिए। वर्ष 1975 के बाद पाठ्यचर्या संबंधी कार्य को जारी रखते हुए परिषद् ने कुछ अध्ययन किए व परामर्श दिए और अपनी गतिविधियों के एक भाग की रूपरेखा भी तैयार की। इस गतिविधि का उद्देश्य था पूरे देश में गुणवत्ता के स्तर पर स्कूली शिक्षा को तुलनीय अर्थात् लगभग समान बनाना तथा देश की विविधता पर समझौता न करते हुए शिक्षा को राष्ट्रीय एकता का माध्यम बनाना।

वर्ष 1976 तक भारतीय संविधान के अंतर्गत राज्य सरकारों को स्कूली शिक्षा संबंधी सभी निर्णय लेने का अधिकार था। इसके अंतर्गत उनके अधिकार क्षेत्र में पाठ्यचर्या भी आती थी। केंद्र केवल नीतिगत मुद्दों पर राज्यों का मार्गदर्शन कर सकता था। इन परिस्थितियों में 1968 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति और राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) द्वारा 1975 में पाठ्यचर्या रूपरेखा की रचना की गई। 1976 में संविधान में संशोधन किया गया और शिक्षा के उत्तरदायित्व को समवर्ती सूची में लाया गया और पहली बार वर्ष 1986 में शिक्षा पर पूरे देश की एक राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनी। शिक्षा की राष्ट्रीय नीति (1986) ने सिफारिश की कि पूरे देश की स्कूली पाठ्यचर्या के मूल में एक सर्वसामान्य (कॉमन कोर) तत्व हो। इस नीति ने राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् को राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा विकसित करने व इस रूपरेखा की समय-समय पर समीक्षा करने का उत्तरदायित्व सौंपा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) की अनुशांसा के अनुरूप राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण (NCERT) द्वारा 1975 के बाद 1988 वर्ष 2000 और 2005 में एक तेजी से बदलते विकासशील संदर्भ में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा प्रस्तुत की गई। प्रस्तुत इकाई में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा— 1975, 1988, 2000 और 2005 का शिक्षा के लक्ष्य और उद्देश्य, शैक्षणिक – नीति, पाठ्यवस्तु संगठन, आकलन के तौर-तरीके और भाषा नीतियों के परिप्रेक्ष्य में विवेचना की गई है।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप:

विद्यालयीन पाठ्यचर्या की रूपरेखा को समझेगे व विश्लेषण कर सकेंगे।

- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा— 1975 का विश्लेषण कर सकेंगे।
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा— 1988 का विश्लेषण कर सकेंगे।
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा— 2000 का विश्लेषण कर सकेंगे।
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा— 2005 का विश्लेषण कर सकेंगे।
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या में शिक्षा के लक्ष्य और उद्देश्य समझ सकेंगे।
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के अनुसार शैक्षणिक नीतियों, पाठ्यवस्तु संगठन और भाषा नीतियों के बारे में समझ सकेंगे।
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के अनुसार आकलन के तौर-तरीके समझ सकेंगे।

4.3 पाठ्यचर्या का अर्थ

शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति पाठ्यचर्या के द्वारा होती है। पाठ्यचर्या शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन है। पाठ्यचर्या में केवल विषयों का ज्ञान नहीं होता वरन् उसमें छात्र की सभी अनुभव निहित होता है। आदर्शवादी **हार्ने** के अनुसार पाठ्यचर्या में सीखने के कार्यों से अधिक बातें आती हैं। इसमें व्यवसाय, उत्पादन, उपलब्धियाँ, अभ्यास, क्रिया आदि सम्मिलित होते हैं।

पाठ्यचर्या उन सभी क्रियाकलापों का एक समूह है जिन्हें अध्यापक तथा छात्र एक साथ मिलकर शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयास करते हैं। आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में पाठ्यचर्या का अत्यधिक विशिष्ट महत्व है। पाठ्यचर्या के आधार पर ही शिक्षा संस्थाओं में शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का समुचित आयोजन सम्भव हो पाता है। पाठ्यचर्या का निर्माण मुख्य रूप से शिक्षा के उद्देश्यों पर आधारित होता है। इसलिए किसी भी स्तर की शिक्षा के पाठ्यचर्या का उस स्तर के लिए निर्धारित उद्देश्यों के अनुरूप होना आवश्यक है।

पाठ्यचर्या का अंग्रेजी पर्यावाची शब्द 'केरीकुलम' है। केरीकुलम शब्द की उत्पत्ति लेटिन भाषा से हुई है जिसका अर्थ है दौड़ का मैदान। पाठ्यचर्या का वह क्षेत्र मैदान है जिसका चक्कर लगाकर व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। विस्तृत अर्थ में पाठ्यचर्या के अंतर्गत समस्त विद्यालयीन वातावरण आता है, जिसके अंतर्गत विद्यालय में प्राप्त सभी प्रकार के सम्पर्क, पाठन क्रिया कलाप एवं विषय सम्मिलित होते हैं।

वास्तव में पाठ्यचर्या को बाल केन्द्रित, अनुभव केन्द्रित तथा क्रिया केन्द्रित होना चाहिए। इसे बालकों के प्राकृतिक वातावरण तथा सामाजिक जीवन से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होना चाहिए। पाठ्यचर्या में ऐसी क्रियाएँ सम्मिलित की जानी चाहिए जो छात्रों की क्षमताओं तथा छात्रों में मिल जुलकर सौहार्द्रपूर्ण ढंग से रहने की भावना को विकसित कर सकें।

देश की आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों के अनुरूप शिक्षा को एक महत्वपूर्ण दायित्व का निर्वाह करना चाहिए। इसलिए सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक परिवर्तन लाने के लिए तथा राष्ट्रीय आदर्शों की प्राप्ति के लिए शिक्षा की एक व्यापक तथा संशोधित योजना की आवश्यकता है।

4.4 पाठ्यचर्या और पाठ्यवस्तु

शिक्षा के क्षेत्र में नवीन प्रवृत्तियों के प्रचलन के पहले पाठ्यचर्या में केवल संज्ञानात्मक विषयों को स्थान दिया जाता था। ये विषय भी छात्र की योग्यता एवं उसके समझ के अनुसार निश्चित नहीं किये जाते। इनका निर्धारण विशेषज्ञों द्वारा विषय के तार्किक क्रम में एवं संगठन के आधार पर किया जा रहा है। अभी तक हम सिलेबस और केरीकुलम को एक ही समझे हुये हैं। जो सिलेबस स्वीकृत हो जाता है उसे ही हम अपना लक्ष्य बना लेते हैं। सिलेबस का निर्धारण आवश्यक है। बिना उसके शिक्षा में निश्चितता नहीं आती लेकिन इसे ही केरीकुलम समझ लेना भ्रम है। सिलेबस का निर्धारण अध्यापक को दृष्टि में रखकर होता

है। अध्यापक को किस स्तर पर किस विषय के अंतर्गत क्या पढ़ाना है, इसका ज्ञान सिलेबस से हो जाता है किन्तु सिलेबस से यह पता नहीं चलता है कि छात्र को क्या करना है।

छात्र, सिलेबस के अनुभव तक ही सीमित नहीं रहता। वह विद्यालय के अन्य अनेक अनुभव प्राप्त करता है। कक्षा में शिक्षण से उसे ज्ञान प्राप्त होता है। किन्तु उससे भी अधिक ज्ञान उसे खेल के मैदान में मिलता है। भाषाओं को सुनकर वादविवाद प्रतियोगिता एवं अन्य गतिविधियों में भाग लेकर वह नये अनुभव ग्रहण करता है। केरीकुलम में ये सभी अनुभव सम्मिलित होते हैं। केरीकुलम का निश्चय हम छात्र के दृष्टिकोण से करते हैं। सिलेबस अध्यापक को दृष्टि में रखकर बनता है, केरीकुलम की रचना छात्र को ध्यान में रखकर की जाती है।

4.5 राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) की सिफारिशों में स्पष्ट किया गया है कि विभिन्न अवस्थाओं में पोषित एवं विकसित की जाने वाली दक्षताओं तथा मूल्यों की पहचान की जाए, किन्तु स्कूली शिक्षा उन परीक्षाओं द्वारा और अधिक परिचालित होती चली गई जो महज़ जानकारी से भरी पाठ्यपुस्तकों पर आधारित होती हैं। वर्ष 2000 में पाठ्यचर्चा की रूपरेखा की समीक्षा के बाद भी पाठ्यचर्चा और परीक्षाओं के विवादास्पद मुद्दे हल नहीं हुए। वर्तमान पाठ्यचर्चा की समीक्षा इस क्षेत्र में हुए सकारात्मक व नकारात्मक दोनों प्रकार के परिवर्तनों पर ध्यान देती है और नयी सदी के मोड़ पर स्कूली शिक्षा की भावी आवश्यकताओं को संबोधित करने का प्रयास करती है। इस प्रयास में अनेक, परस्पर संबंधित आयामों को ध्यान में रखा गया है; जैसे—शिक्षा के लक्ष्य, बच्चों का सामाजिक परिप्रेक्ष्य, ज्ञान की प्रकृति, मानव विकास की प्रकृति और बच्चों के सीखने की प्रक्रिया।

‘राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा’ को प्रायः गलत समझा गया है मानो यह एकरूपता लाने के लिए प्रस्तावित दस्तावेज़ हो जबकि राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) और प्रोग्राम ऑफ एक्शन (1992), में स्पष्ट किया गया उद्देश्य इसके ठीक विपरीत था। राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने नवीन पाठ्यचर्चा की रूपरेखा प्रस्तावित की ताकि वह ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था के विकास का ज़रिया बने जिसमें यह सामर्थ्य हो कि वह भारत के भौगोलिक एवं सांस्कृतिक वातावरण को दृष्टि में रखते हुए अकादमिक घटकों के साथ सामान्य आधारभूत मूल्य भी सुनिश्चित करे। राष्ट्रीय शिक्षा नीति—प्रोग्राम ऑफ एक्शन ने 14 वर्ष की आयु तक सभी बच्चों का सार्वभौमिक नामांकन तथा सार्वभौमिक रूप से उन्हें स्कूलों में टिकाए रखने और स्कूली शिक्षा की सार्वभौमिक गुणवत्ता में ठोस सुधार के लिए बाल केंद्रित उपागम का विचार प्रस्तुत किया था। राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा की खासियत के रूप में प्रासंगिकता, लचीलापन तथा गुणवत्ता पर बल देते हुए प्रोग्राम ऑफ एक्शन राष्ट्रीय शिक्षा नीति की इसी दृष्टि को विस्तारित किया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में उल्लेखित है कि राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था पूरे देश के लिए एक राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा के ढाँचे पर आधारित होगी जिसमें एक “सामान्य केंद्र” (कॉमन-कोर) होगा और अन्य हिस्सों की बाबत लचीलापन रहेगा, जिन्हें स्थानीय पर्यावरण तथा परिवेश के अनुसार ढाला जा सकेगा। “सामान्य केंद्र” में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का

इतिहास, संवैधानिक जिम्मेदारियों तथा राष्ट्रीय अस्मिता से संबंधित अनिवार्य तत्व शामिल होंगे। ये मुद्दे किसी एक विषय का हिस्सा न होकर लगभग सभी विषयों में पिरोए जाएँगे। इनके द्वारा राष्ट्रीय मूल्यों को हर व्यक्ति की सोच और ज़िंदगी का हिस्सा बनाने की कोशिश की जाएगी। इन राष्ट्रीय मूल्यों में ये बातें शामिल हैं हमारी समान सांस्कृतिक धरोहर, लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, स्त्री-पुरुषों के बीच समानता, पर्यावरणका संरक्षण, सामाजिक समता, सीमित परिवार का महत्व और वैज्ञानिक तरीके के अमल की जरूरत। यह सुनिश्चित किया जाएगा कि सभी शैक्षिक कार्यक्रम धर्मनिरपेक्षता के मूल्यों के अनुरूप ही आयोजित हों। भारत ने विभिन्न देशों में शांति और आपसी भाईचारे के लिए सदा प्रयत्न किया है, और “**वसुधैव कुटुंबकम्**” के आदर्शों को सँजोया है। इस परंपरा के अनुसार शिक्षा-व्यवस्था का प्रयास यह होगा कि नयी पीढ़ी में विश्वव्यापी दृष्टिकोण सुदृढ़ हो तथा अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की भावना बढ़े। शिक्षा के इस पहलू की उपेक्षा नहीं की जा सकती। समानता के उद्देश्य को साकार बनाने के लिए सभी को शिक्षा के समान अवसर उपलब्ध करवाना ही पर्याप्त नहीं होगा, ऐसी व्यवस्था होना भी ज़रूरी है जिससे सभी को शिक्षा में सफलता प्राप्त करने के समान अवसर मिलें। इसके अतिरिक्त, समानता की मूलभूत अनुभूति केंद्रिक पाठ्यचर्या के द्वारा करवाई जाएगी। वास्तव में राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था का उद्देश्य है कि सामाजिक माहौल और जन्म के संयोग से उत्पन्न पूर्वाग्रह और कुंठाएँ दूर हों और सभी में आपसी भाई चारा हो।

इस प्रकार राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के रूपरेखा की परिकल्पना शिक्षा व्यवस्था को आधुनिक बनाने के रूप में की गई।

4.5.1 राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 1975 का विश्लेषण

किसी भी देश का स्कूल-पाठ्यक्रम उसके संविधान की भांति उसकी आत्मा का प्रतिनिधित्व करता है। बेसिक शिक्षा-प्रणाली के रूप में महात्मा गाँधी ने भारतीय समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप नई प्रणाली के विकास का एक विकल्प प्रस्तुत किया था। शिक्षा-आयोग (1964-66) की रिपोर्ट में बेसिक शिक्षा के श्रेष्ठतम तत्वों को सम्मिलित करते हुए शिक्षा को राष्ट्र के जीवन आवश्यकताओं और आकांक्षाओं से सम्बद्ध करने के लिए उसके आन्तरिक “परिवर्तन” पर बल दिया गया है। हमारे संविधान में स्थापित मूल्य बहुत्ववादी खुले समाज और धर्म निरपेक्ष, जनतान्त्रिक तथा समाजवादी राज्य के विकास की ओर संकेत करते हैं। स्कूल-पाठ्यक्रम अपनी संरचना, विषय वस्तु, निहित विधि, अपनी सम्पूर्ण रूपरेखा में, इन उद्देश्यों और मूल्यों को प्ररिलक्षित करने वाला होना चाहिए।

राष्ट्रीय विकास की आवश्यकताओं के अनुरूप वर्तमान शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन लाना सुगम नहीं है। देश के स्कूलों में बच्चों की बढ़ती संख्या के दबाव को देखते हुए अच्छी शिक्षा उपलब्ध कराना उत्तरोत्तर कठिन होगा और यह कार्य हठवादिता और रूढ़िग्रस्तता के कारण और कठिन हो गया है। अतः यह कार्य अनिवार्य है कि शिक्षण और शिक्षा की नई विधियों को समझा जाए और यह भी समझ लिया जाए कि हमारे समाज में गैर-औपचारिक शिक्षा, ज्ञान का बहुत बड़ा स्रोत है और इसका उपयोग होना ही चाहिए। यह जानना भी आवश्यक है कि विद्यालयों में पाठ्यक्रमों, शिक्षण और सीखने की विधियों और सामग्रियों, मूल्यांकन, समय-सारिणी, प्रवेश-नीति और उसका पालन, विद्यालय-जगत और अलग-अलग विद्यालयों के प्रशासन, अध्यापकों की सेवाकालीन तैयारी करने और प्रशिक्षित करने, समुदाय के उपलब्ध

स्रोतों का उपयोग तथा इसी प्रकार के अनेक क्षेत्रों में हमें बहुमुखी लचक रखनी होगी। अतः स्कूल में बहुस्तरीय प्रवेश, स्कूल में प्रश्नकालीन-शिक्षा, स्कूल के बाहर गैर-औपचारिक शिक्षा, तथा अनुभवों कर्मकार, शिल्पकार, कलाकार, लेखक द्वारा विद्यालय में शिक्षण आदि सभी बातों का प्रयोग करना होगा।

● शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य

शैक्षिक योजनाकारों, प्रशासकों, निरीक्षकों और अध्यापकों के मार्ग-दर्शन के लिए स्तर और विषय के अनुसार सामान्य शिक्षा के विस्तृत उद्देश्यों को स्पष्ट किये जाने से उनका लाभ सीमित न होकर सभी क्षेत्रों तक समान होता है। एन.सी.एफ-1975 के लक्ष्य एवं उद्देश्य निम्नवत हैं

प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य — शिक्षा के इस स्तर पर मोटे तौर से पहली से पाँचवीं कक्षा तक पढ़ने वाले 6 से 11+ की आयु के बच्चे होते हैं। बच्चे के जीवन में यह आयु बहुत महत्वपूर्ण है इसके उद्देश्य निम्नालिखित हैं—

1. बच्चे की प्रत्युन्नति, जिज्ञासा, सर्जन शक्ति और क्रियाशीलता आदि में लचकहीन और अनाकर्षक शिक्षण-विधि और परिवेश के कारण रुकावट नहीं आनी चाहिए।
2. पाठ्यक्रम में बच्चे की सामाजिक, बौद्धिक, भावनात्मक और शारीरिक परिपक्वता तथा समुदाय की सामाजिक-आर्थिक आवश्यकताओं को ध्यान रखा जाना चाहिए।
3. प्रत्येक बच्चे की सफलता की सीमाओं की यथार्थ दृष्टि से समझना और प्रत्येक स्कूल के लिए इस न्यूनतम सीमा का अतिक्रमण करके परिस्थितियों के अनुसार अधिक सफलता प्राप्त करने के अवसर प्रदान करना।
4. बहुत से बच्चों के लिए प्राथमिक स्तर ही अन्तिम भी होता है। अतः उन्हें ऐसी शिक्षा देना अत्यन्त आवश्यक है, जो उन्हें अपने जीवन के लिए तथा स्वयं सीखने के लिए तैयार कर सके। इस स्तर पर शिक्षा के उद्देश्य इस प्रकार हैं:

प्रथम उद्देश्य है साक्षरता। बच्चे को प्रथम भाषा सिखाई जानी चाहिए। यह भाषा सामान्यतः मातृभाषा होनी चाहिए। प्रथम भाषा का स्तर इतना अवश्य होना चाहिए कि वह औरों से वार्तालाप करके या लिख कर अपनी बात भली भाँति कह सके।

दूसरा उद्देश्य है अंक-ज्ञान। बच्चे को चार मूलभूत संख्यात्मक क्रियाओं (जोड़, बाकी, गुणा, भाग) का ज्ञान हो जाना चाहिए। अपने सामुदायिक जीवन में व्यावहारिक समस्याओं को सुलझाने में उनका उपयोग करना उसे आ जाना चाहिए।

तीसरा उद्देश्य है तन्त्र-ज्ञान। बच्चे को विज्ञान समझने की विधि आ जानी चाहिए और उसका इतना ज्ञान होना चाहिए कि अपने जीवन और आसपास के वातावरण में विज्ञान और यन्त्र का महत्व समझ सके।

बच्चे में झण्डे और राष्ट्रीय प्रतीकों, देश की जनतान्त्रिक पद्धति और संस्थाओं का आदर करने की भावना उत्पन्न होनी चाहिये बच्चे में हाथ से काम करने का, अच्छा समझने का दृष्टिकोण भी उत्पन्न होना चाहिए। बच्चे में स्वच्छता और स्वस्थ जीवन जीने की आदत और अपने पास-पड़ोस की स्वच्छता और स्वास्थ्य के प्रति समझ भी विकसित होनी चाहिए। बच्चे में अच्छे और सुन्दर के प्रति आकर्षण-भाव उत्पन्न होनी चाहिए। सार्वजनिक लक्ष्यों के लिए मिल कर काम करने में लाभ होता है— उसमें यह समझ भी उत्पन्न होनी चाहिए। भूमिका की

चेतना के साथ—साथ बच्चे में पहल, नेतृत्व, दया, ईमानदारी जैसी वांछित चारित्रिक विशेषताओं का विकास भी होना चाहिए। बच्चे में सर्जनात्मक कार्यों के माध्यम से अभिव्यक्ति की क्षमता उत्पन्न होनी चाहिए और उसे स्वयं सीखने की आदत भी पड़नी चाहिए।

मिडिल स्तर पर शिक्षा के उद्देश्य

छठी से आठवीं की कक्षा मिडिल स्तर होता है जिसमें आयु सामान्यतः 11+ से 14+ होती है। अतः इस अवस्था में इतिहास, भूगोल और अन्य विषयों के सही अध्ययन पर आधारित समझ का बच्चों में विकास होना चाहिए। उन्हें देश के संविधान और उसमें निहित मूल्यों का ज्ञान होना चाहिए। उन्हें देश की जन-तान्त्रिक प्रक्रियाओं, ढाँचों और संस्थाओं की अच्छी समझ होनी चाहिये। बच्चे में द्वितीय भाषा के सामान्य वाक्यों तथा गद्य और पद्य की सुगम रचनाओं को समझने की क्षमता उत्पन्न होनी चाहिए।

विज्ञान के क्षेत्र में भौतिक विज्ञान और जीव-विज्ञान भी सम्मिलित किए जाने चाहिए। साथ ही विज्ञान और जीवन का सार्थक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए परिवेश-शिक्षा, पोषण, स्वास्थ्य और जनसंख्या-शिक्षा पर भी पर्याप्त ध्यान देना चाहिए। इस आयु में कार्यानुभव के क्षेत्र में उत्पादन तथा सामुदायिक जीवन के साथ विज्ञान, गणित और तकनीकी को सुसम्बद्ध करने के लिए कृषि तथा तकनीकी की प्रक्रियाओं और साधनों के उपयोग पर बल दिया जाना चाहिए।

निम्न-माध्यमिक-शिक्षा के उद्देश्य

निम्न माध्यमिक-शिक्षा के स्तर पर केवल दो कक्षाएँ नवीं और दसवीं होती हैं। इसमें आयु-सीमा 14+ से 16+ होती है। ये दो कक्षाएँ दस-वर्षीय सामान्य शिक्षा की पूर्ण करने वाली हैं। इसके पश्चात् विद्यार्थियों के समक्ष तीन सम्भव विकल्प होते हैं—

विज्ञान और गणित के क्षेत्र में विद्यार्थी में इतनी क्षमता उत्पन्न हो जानी चाहिए कि वह अपने ज्ञान का प्रयोग अपने वातावरण की समस्याओं के हल ढूँढ़ने में कर सके। उसे अपने आसपास कृषि और उद्योग में प्रयुक्त तकनीकी विधियों का ज्ञान भी होना चाहिए। उसमें इतनी योग्यता भी आनी चाहिए कि परिवेश-संरक्षण, प्रदूषण को कम करने, तथा समुदाय में उचित पोषण, स्वास्थ्य और स्वच्छता की चेतना विकसित करने में वह अपना सार्थक योगदान कर सके। उसमें बच्चों के पालन-पोषण की सही आदतें और दृष्टिकोण के विकास एवं घर में सुधार करने में सहायता देने की योग्यता होनी चाहिए।

बच्चों में इस आयु तक कार्य-क्षेत्र में प्रवेश करने योग्य आवश्यक ज्ञान और प्रवीणता का विकास हो जाना चाहिए। उसे एक या दो उपयोगी शिल्प सीख लेने चाहिए। किन्तु यह भी उतना ही आवश्यक है कि उसे कार्य क्षेत्र में प्रयुक्त सामग्रियों, यन्त्रों, तकनीकों और प्रक्रियाओं की आवश्यक जानकारी दे दी जाए ताकि वह जीवन में आत्मविश्वास के साथ प्रवेश कर सके। प्रथम भाषा का इतना ज्ञान होना चाहिए कि उसके साहित्य के सर्वश्रेष्ठ नमूनों को वह समझ सके। तृतीय भाषा उस स्तर तक सिखाई जानी चाहिए कि विद्यार्थी सुगम पाठ को पढ़कर समझ सके और उसके अर्थ को व्यक्त कर सके।

इतिहास और भूगोल जैसे विषयों के अध्ययन के साथ-साथ विद्यार्थी में यह समझ भी विकसित होनी चाहिए कि वह अपने देश का ही नहीं बल्कि अन्य देशों-विशेषतः पड़ोसी

देशों—की सामाजिक और संस्कृतिक विशेषताओं को समझ सके। पाठ्यक्रम और पाठ्यक्रर गतिविधियों, शारीरिक शिक्षा, खेल—कूद आदि के माध्यम से उसमें दवा, सहकारिता, समूह भावना, सहयोग, नेतृत्व, साहस, सत्य, ईमानदारी और उत्तरदायित्व, आदि वांछित सामाजिक गुण उत्पन्न होने चाहिए। इसमें राष्ट्रीय और नागरिक, सम्पत्ति के मूल्य को समझने और उसके संरक्षण की योग्यता उत्पन्न होनी चाहिए। जनतन्त्र, धर्म—निरपेक्षता और समाजवाद के सिद्धान्त उसके सामने स्पष्ट हो जाने चाहिए।

● शैक्षणिक नीतियाँ

शिक्षक—विद्यार्थी गतिविधियाँ और उनकी प्रायोजना शैक्षिक प्रक्रिया में महत्वपूर्ण है। पाठ्यक्रम के उद्देश्यों की प्राप्ति उनकी स्पष्टतः समझने और प्रभावपूर्ण प्रयोग पर निर्भर करती है। विद्यार्थी की प्रकृति और पृष्ठभूमि तथा स्थानीय स्थितियों और उपलब्ध स्रोतों को देखते हुए शिक्षा के लिए ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न करनी होंगी कि शिक्षण—उद्देश्यों को साकार किया जा सके। ये स्थितियाँ कक्षा के अन्दर और बाहर दोनों स्थानों पर उत्पन्न की जा सकती है।

अध्यापक ऐसा मार्ग—दर्शक, सहायक, और सबसे बढ़कर समझदार मित्र होता है जिसकी ओर बच्चे मार्ग न खोज पाने पर या किसी सूचना की आवश्यकता होने पर प्रसन्नता और विश्वासपूर्वक देखते हैं। अध्यापक की भूमिका आज्ञा देने वाले की अपेक्षा सलाहकार और प्रस्तोता की होनी चाहिए। अध्यापक को यह स्मरण रखना चाहिए कि बच्चा काम करके और स्वयं खोज करके बेहतर ढंग से सीखता है, न कि तथ्यात्मक ज्ञान प्रदर्शन को दबू बनकर सुनने से। केवल इसी खोज की ओर प्रवृत्त करने वाली क्रियात्मक और सर्जनात्मक प्रक्रिया से ही बच्चे में रुचि उत्पन्न होती है; उसे आनन्द मिलता है और उसका ध्यान तुरन्त आकर्षित होता है।

ज्ञानार्जन—प्रक्रिया की कुछ मूलभूत शर्तें हैं, जिन्हें उचित दृष्टिकोण और विधि अपनाने के लिए अध्यापक को ध्यान में रखना होगा। स्थूल से सूक्ष्म की ओर, ज्ञात से अज्ञात की ओर, सम्पूर्ण से खण्डों की ओर, सुगम से कठिन की ओर आदि शिक्षण के कतिपय मूल तत्व इतने प्रसिद्ध हैं कि इन पर विशेष कुछ कहने की आवश्यकता प्रतीत होती। किन्तु कुछ और बातों पर थोड़ा विचार होना चाहिए।

परिवेश—अध्ययन के शिक्षण की संश्लिष्ट विधि सम्पूर्ण विषय की अपेक्षा अध्यायों और वस्तु वृत्तों पर आधारित होती है। इससे बच्चों को स्थितियों से सीखने का अवसर दिया जाता है। इस प्रकार के अनुभवों के आयोजन में अध्यापक को अधिक स्वतन्त्रता होती है। पाठ्यक्रम में ऐसी जानकारी, समझ, रुचियों, मूल्य और दृष्टिकोण होना चाहिए जिनका बच्चों में विकास करना है। मिट्टी की छोटी—छोटी वस्तुएँ बनाने में बच्चों की सहायता करना, उन्हें स्कूल की वाटिका में ले जाना और उनसे फूलों के बारे में बातचीत करना, आस—पास के क्षेत्रों के भ्रमणों का आयोजन, कक्षा के अन्दर या कक्षा के बाहर उपलब्ध वस्तुओं की नाप जोख करना, भोजन, कपड़े और आवास के संदर्भ में विभिन्न ऋतुओं पर बातचीत करना, त्यौहारों का आयोजन और बच्चों के सामने उन स्थितियों को रखना जिनसे वे नागरिक और सामाजिक जीवन के मुख्य तत्वों को समझ सकें इत्यादि

गतिविधियों के कुछ उदाहरण हैं जिनके द्वारा बच्चों को विभिन्न क्षेत्रों का ज्ञान दिया जा सकता है और उन्हें संबंधित कार्यों में प्रवीण बनाया जा सकता है।

- **पाठ्यवस्तु संगठन**

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूप रेखा-1975 के अनुसार कक्षावार पाठ्यवस्तु का संगठन निम्नवत है—

- **कक्षा I एवं II**

1. प्रथम भाषा
2. गणित
3. परिवेश अध्ययन (सामाजिक अध्ययन और सामान्य विज्ञान)
4. कार्यानुभव और कलाएँ
5. स्वास्थ्य शिक्षा और खेल

- **कक्षा III, IV एवं V**

1. प्रथम भाषा
2. गणित
3. परिवेश अध्ययन I (सामाजिक अध्ययन)
4. परिवेश अध्ययन II (सामान्य विज्ञान)
5. कार्यानुभव और कलाएँ
6. स्वास्थ्य शिक्षा और खेल

- **कक्षा VI, VII, एवं VIII**

1. प्रथम भाषा यथावत और द्वितीय भाषा का प्रारम्भ (हिन्दी अथवा अंग्रेजी)
2. गणित (बीजगणित और ज्यामिति सहित)
3. सामाजिक विज्ञान (इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र और अर्थशास्त्र के तत्व)
4. विज्ञान (भौतिक विज्ञानों और जीव विज्ञानों के तत्व)
5. कलाएँ
6. कार्यानुभव
7. शारीरिक शिक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा और खेल

- **कक्षा IX एवं X**

1. प्रथम और द्वितीय भाषाएँ यथावत और तृतीय भाषा का प्रारम्भ (अंग्रेजी अथवा कोई भारतीय भाषा)
2. गणित (बीजगणित और ज्यामिति सहित)
3. सामाजिक विज्ञान (इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान)
4. विज्ञान (भौतिक विज्ञान और जीव विज्ञान)
5. कलाएँ
6. कार्यानुभव
7. शारीरिक शिक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा और खेल।

● आंकलन के तौर तरीके

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूप रेखा-1975 में मूल्यांकन का प्रमुख लक्ष्य यह देखना था कि पाठ्यक्रमों के निर्धारित उद्देश्यों की किस सीमा तक प्राप्ति हुई है। यह प्रक्रिया स्वभावतः शैक्षिक अनुभवों और शिक्षण की उन विषयों से सम्बद्ध है जो सीखने की प्रक्रिया में प्रयुक्त की गई हों। मूल्यांकन को उपयोगी बनाने के लिए उसमें इन विशेषताओं का होना आवश्यक है—

- उसे निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के विश्वसनीय और ठोस प्रमाण देने वाला होना चाहिए।
- उसे क्रमशः कई एक उद्देश्यों की फिर सम्पूर्ण पाठ्यक्रम की अपनी सीमा में लेने वाला होना चाहिए।
- मूल्यांकन लिखित, प्रायोगिक और मौखिक परीक्षाओं, निरीक्षण, स्तरीकरण इत्यादि विभिन्न साधनों और तरीकों से होना चाहिए ताकि विभिन्न उद्देश्यों और वस्तु सामग्री से संबद्ध संप्राप्ति का मूल्यांकन हो सके। मूल्यांकन थोड़े-थोड़े समय पर कई बार होना चाहिए।
- मूल्यांकन शिक्षा-प्रक्रिया में ही सन्निहित होना चाहिए। प्रत्येक बच्चे के लिए लगातार प्रगति का लेखा रखने की प्रणाली का विकास किया जाना चाहिए। इसका आधार निरीक्षण और मौखिक परीक्षाएँ होनी चाहिए। आधार वर्ष के अन्त में ली जाने वाली मौखिक परीक्षा नहीं होनी चाहिए सत्र में प्रगति के लेखे के आधार पर ही बच्चे को अगली कक्षा में चढ़ाना चाहिए।
- प्रत्येक क्षेत्र में विद्यार्थियों की प्रगति का अविरल मूल्यांकन एक नियमित कार्य-पद्धति पर आधारित होना चाहिए। मिडिल व आगे के विद्यार्थियों की विभिन्न विषयों में प्रगति के मूल्यांकन के लिए लिखित परीक्षाएँ भी होनी चाहिए।
- प्रायोगिक परीक्षाएँ भी प्रारम्भ करनी चाहिए। निरीक्षण जाँच-सूचियाँ, मौखिक परीक्षाएँ, विद्यार्थियों द्वारा वस्तुओं का मूल्यांकन भी इस परीक्षण के अतिरिक्त साधनों विधियों के रूप में प्रयुक्त होना चाहिए। यदि आवश्यक हो तो वार्षिक परीक्षा भी ली जा सकती है। किन्तु, वर्ष भर में किए गए अन्य मूल्यांकनों की तुलना में इस पर अधिक बल नहीं देना चाहिए।
- प्रत्येक विषय/इकाई में स्कूल द्वारा किए गए संचयित मूल्यांकन का रिकार्ड बनाया जाना चाहिए और प्रत्येक विद्यार्थी को दिया जाना चाहिए। इस प्रकार के मूल्यांकन के लेखे में शैक्षिक और गैर-शैक्षिक क्षेत्र, दोनों होने चाहिए। स्कूल छोड़ने के अन्तिम प्रमाणपत्र में उत्तीर्ण या अनुत्तीर्ण नहीं लिखा होना चाहिए। इस प्रमाणपत्र में प्रत्येक विद्यार्थी द्वारा विद्यालय में प्राप्त सूचकांक-अक्षरों (ए, बी, सी, डी, ई) का ही उल्लेख होना चाहिए। राज्य भर में स्कूल समुच्चयों की स्थापना की जा सकती है। किसी भी समुच्चय के स्कूल के अध्यापकों की एक समिति बनाई जा सकती है, जो अपने क्षेत्र के स्कूलों से समय-समय पर उत्तर पुस्तिकाएँ और प्रश्न-पत्र मंगा कर पूर्वाग्रह दूर करने हेतु कुछ को पुनः मूल्यांकित करे फिर सम्बद्ध अध्यापकों से उन पर खुला विचार-विमर्श किया जा सकता है।

प्रत्येक स्कूल को समय-समय पर समुदाय सभाओं का आयोजन करना चाहिए। यह केवल समुदाय को विद्यालय से संयुक्त करने के लिए ही नहीं होगा बल्कि यह बताने के लिए भी होगा कि मूल्यांकन किस प्रकार किया जाता है व विद्यार्थी की शिक्षा और विकास में प्रगति

लाने और अध्यापकों द्वारा शिक्षण में सुधार लाने में किस प्रकार उसका उपयोग किया जाता है।

- **भाषा नीतियाँ**

त्रि-भाषा फार्मूला राष्ट्रीय नीति के रूप में स्वीकार किया गया है। स्कूल में दस वर्ष व्यतीत करने के पश्चात् बच्चे को प्रथम भाषा में प्रवीण, दूसरी भाषा समझने और उसमें स्वयं को अभिव्यक्त करने में समर्थ, तथा तृतीय भाषा के सामान्य छपे हुए रूप को समझने योग्य हो जाना चाहिए। प्रथम भाषा सामान्यतः मातृभाषा होनी चाहिए। जहाँ मातृभाषा हिन्दी नहीं है, वहाँ पर द्वितीय भाषा होनी चाहिए। तृतीय भाषा सामान्यतः अंग्रेजी होनी चाहिए, किन्तु उसके स्थान पर कोई अन्य विदेशी भाषा भी हो सकती है। संस्कृत या फारसी प्रथम या द्वितीय भाषा के अंग के रूप में अथवा अलग से चौथे विषय के रूप में सम्मिलित की जा सकती है।

प्राथमिक स्तर के अन्त तक विद्यार्थी को मातृभाषा के मानक रूप के माध्यम से सामान्य रूप में अपेक्षित गठन और शब्दावली का प्रयोग करके मौखिक और लिखित रूप में आत्माभिव्यक्ति में समर्थ हो जाना चाहिए। विद्यार्थी को शुद्ध उच्चारण, ध्वनि के उतार-चढ़ाव, मुद्रा, आवश्यक गति और अर्थ-ग्रहण के साथ बोल-बोल कर पढ़ना आना चाहिए। विद्यार्थी को अर्थ-ग्रहण करते हुए मौन-पठन का सही तरीका भी आना चाहिए। उसमें अपने स्तर के अनुरूप सरल वर्णनों को सुनकर अर्थ-ग्रहण की क्षमता भी होनी चाहिए। मिडिल और माध्यमिक स्तरों पर गहनतर भाषा वैज्ञानिक और विचारणात्मक विषय-वस्तु के माध्यम से उपरोक्त सभी विशेषताओं में वृहत्तर प्रवीणता अपेक्षित है।

भाषा पाठ्यक्रमों का निर्माण उचित दृष्टिकोणों और रुचियों, करुणा, ईमानदारी, सहनशीलता, सच्चाई जैसे मानव-मूल्यों, राष्ट्रीय चेतना, परख और खोज की प्रवृत्ति आदि के विकास को ध्यान में रख कर किया जाना चाहिए।

द्वितीय भाषा प्राथमिक स्तर अथवा मिडिल स्तर पर प्रारम्भ की जा सकती है। तृतीय भाषा छठी कक्षा से प्रारम्भ की जा सकती है। परन्तु तीनों भाषाएँ दसवी कक्षा के अन्त तक पढ़ाई जानी चाहिए। भाषा-पुस्तकों की सामग्री का चयन वांछित दृष्टिकोणों और मूल्यों तथा सम्बद्ध लोगों के जीवन और संस्कृति की सामान्य पहचान का विकास कराने की दृष्टि से होना चाहिए। भाषा-शिक्षण की मौखिक, श्रौतिकपद्धति का उपयोग किया जाना चाहिए।

स्कूल स्तर पर किसी भाषा को विकल्प और अ-परीक्षणीय विषय का स्थान नहीं दिया जाना चाहिए। इसके विपरीत मिडिल और माध्यमिक स्तरों पर अतिरिक्त विषयों के रूप में अन्य भारतीय और विदेशी भाषाओं के अध्ययन की सुविधा प्रदान की जानी चाहिए। यह हमेशा याद रखना चाहिए। कि विषयों का अध्ययन भाषा-अध्ययन में सहायक होता है। अतः भाषा-अध्ययन के भार को उचित सीमाओं में रखने, और भाषा-शिक्षण-सामग्री को सम्मिलित करने की संभावना भी बनी रहनी चाहिए।

4.5.2 राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा 1988 का विश्लेषण

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा पर एक सामान्य कोर के पाठ्यक्रम के साथ-साथ अन्य लचीले घटकों पर आधारित एक राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की परिकल्पना की गई। राष्ट्रीय शिक्षा नीति/कार्यक्रम योजना में शिक्षा के लिये बालकेन्द्रित दृष्टिकोण को अपनाने की परिकल्पना की गई। इस परिप्रेक्ष्य में सभी बच्चों के नामांकन को बढ़ावा देने तथा नामांकित किये गये सभी बच्चों को स्कूलों में रोककर रखने तथा शिक्षा की गुणवत्ता में पर्याप्त सुधार लाने के लिये प्रयास किये जायेंगे। राष्ट्रीय शिक्षा नीति/कार्यक्रम की योजना के अनुसरण में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद ने 1988 में स्कूल शिक्षा के सभी स्तरों पर एक राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा तैयार किया। आधुनिकीकरण और प्रासंगिकता की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम में पाठ्यचर्चा के बोझ को कम करने की जरूरत पर विशेष ध्यान दिया गया है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा के मार्गदर्शी सिद्धान्तों का अनुपालन करते हुए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद ने समूचे स्कूली पाठ्यक्रम को संशोधित करके कक्षा एक से बारह तक के लिये संशोधित पाठ्यपुस्तकें प्रकाशित की। राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा-1988 के आधार पर राज्यों तथा केन्द्रशासित प्रदेशों ने भी पाठ्यक्रम में संशोधित करने तथा स्कूल, शिक्षा प्रणाली में चरणबद्ध तरीके से नई पाठ्यपुस्तकें विकसित करने के लिये कदम उठाये हैं

इस दस्तावेज में शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली को उस उभयनिष्ठ संरचना राष्ट्रीय पाठ्यचर्चात्मक ढांचे से जोड़ने संस्कृति विशिष्ट पाठ्यचर्चा के विकास सभी वर्गों के लोगों की तुलनीय गुणवत्ता वाली शिक्षा तक पहुंच, अधिगम को आनन्ददायक बनाने तथा न्यूनतम अधिगम स्तरों की प्राप्ति पर बल देने की आवश्यकता का अनुभव किया गया तथा विषयवस्तु के पुनः अभिविन्यास के लिये राष्ट्रीय कोर पाठ्यक्रम तथा संशोधित अनुभव कार्यक्रम का सुझाव दिया गया।

- शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य

- शैक्षणिक नीतियाँ

- पाठ्यवस्तु संगठन

राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा – 1988 में न्यूनतम अधिगम स्तर को ध्यान में रखते हुए विभिन्न विषयों का कक्षावार एवं विषयवार पाठ्यवस्तु विवरण निम्नवत दिया गया है।

(1) पूर्व प्राथमिक शिक्षा (दो वर्ष)

इस स्तर पर कोई औपचारिक विषयों का शिक्षण नहीं दिया गया है इसके अंतर्गत बच्चों के लिए समूहिक गतिविधियाँ, खेल, रोल-प्ले आदि कराने का सुझाव दिया गया है, जिसमें खेल आधारित तकनीक पर जोर दिया गया है।

(2) प्रारंभिक शिक्षा (आठ वर्ष)

- प्राथमिक स्तर (पाँच वर्ष)

(अ) एक भाषा – मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा

(ब) गणित

- (स) पर्यावरणीय अध्यान एक और दो
- (द) कार्यानुभव समाजोपयोगी उत्पादक कार्य (SUPW)
- (इ) कला शिक्षा
- (फ) स्वास्थ्य, शारीरिक शिक्षा

- **उच्च प्राथमिक स्तर (तीन वर्ष)**

- (अ) तीन भाषाएँ – प्रथम भाषा—मातृभाषा। क्षेत्रीय भाषा, द्वितीयभाषा—अंग्रेजी, तृतीय भाषा— हिन्दी या आधुनिक भारतीय भाषा
- (ब) गणित
- (स) विज्ञान
- (द) सामाजिक विज्ञान
- (इ) कार्यानुभव / समाजोपयोगी उत्पादक कार्य (SUPW)
- (फ) कला शिक्षा
- (ग) स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा

- **माध्यमिक स्तर (दो वर्ष)**

- अ) तीन भाषाएँ
- (ब) गणित
- (स) विज्ञान
- (द) सामाजिक विज्ञान
- (इ) कार्यानुभव
- (फ) कला शिक्षा
- (ग) स्वस्थ एवं शारीरिक शिक्षा

- **भाषा नीतियाँ**

बच्चों को सीखने में भाषा का महत्वपूर्ण योगदान होता है। बच्चों के विषयवस्तु सम्प्रेषण में भाषा सहायक है। भाषा के माध्यम से ही बच्चों में अन्य विषयों की अच्छी समझ विकसित होती है।

इस राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा में त्रि भाषा सूत्र को क्रियान्वित किया गया है। त्रिभाषा के अन्तर्गत प्रथम भाषा— मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा द्वितीय भाषा के अन्तर्गत हिन्दी या अंग्रेजी को चिन्हित किया गया है। हिन्दी बोलने वाले राज्यों में द्वितीय भाषा के रूप में अंग्रेजी एवं अन्य भाषाओं वाले राज्यों में द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी की अनुशंसा की गई है।

तृतीय भाषा के अन्तर्गत हिन्दी न बोलने वाले राज्यों के लिये हिन्दी अथवा अंग्रेजी जहाँ द्वितीय भाषा के रूप अध्ययन न हो। इसी तरह हिन्दी बोलने वाले राज्यों के लिये तृतीय भाषा अंग्रेजी अथवा आधुनिक भारतीय भाषा जो द्वितीय भाषा के रूप में न पढ़ाई जा रही हो।

प्राथमिक स्तर पर कोई एकभाषा — मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा। यदि प्राथमिक विद्यालयों में द्वितीय भाषा के लिये संसाधन उपलब्ध हों तो उपयुक्त कक्षाओं में इसका अध्यापन कार्य किया जा सकता है।

- **आंकलन के तौर तरीके**

4.5.3 राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा-2000 का विश्लेषण

भारत एक राष्ट्र के रूप में अपने बच्चों और अशिक्षित प्रौढ़ों की शिक्षा के लिए नवीन और प्रभावशाली तरीकों की खोज के प्रति निरंतर प्रयत्नशील है। बिना किसी सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक भेदभाव के, सभी समुदाय के सभी लोगों की शिक्षा के संदर्भ में किए गए प्रयासों की सफलता पर अब एक गंभीर बहस राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पुनर्जीवित की जा रही है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में स्पष्ट रूप से यह उल्लेख है कि “नवीन नीति के विभिन्न मानदंडों के क्रियान्वयन की हर पाँच वर्ष में समीक्षा करना अनिवार्य है। क्रियान्वयन की प्रगति और उससे समय-समय पर उभरने वाली दृष्टियों को सुनिश्चित करने के लिए थोड़े-थोड़े अंतरालों पर आकलन करना आवश्यक होगा।” बारह वर्ष से भी अधिक समय पूर्ण राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के अनुसार प्रारंभिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा: एक रूपरेखा, 1988 नामक दस्तावेज तैयार किया गया था। कार्य योजना 1992 में स्पष्ट उल्लेख है कि – “मुख्य सरोकारों से जुड़े कुछ मुद्दों, ज्ञान के उत्कर्ष और शिक्षाशास्त्रीय परिप्रेक्ष्यों पर बढ़ते हुए जोर की दृष्टि से इसका आधुनिकीकरण करने की जरूरत थी। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी) को सलाह दी जाएगी कि वह आठवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002) के दस्तावेज़ में भी पाठ्यचर्चा की समीक्षा और उसके उन्नयन के प्रति चिंता व्यक्त करते हुए इस कार्य को परिषद् द्वारा किए जाने की बात कही गई है। इन दस्तावेजों से संदेश ग्रहण करने के अतिरिक्त परिषद् भी एक शीर्षस्थ शैक्षिक संस्था के रूप में गंभीरता से यह महसूस करती है कि पाठ्यचर्चा-निर्माण केवल एक ही बार किया जाने वाला प्रयास नहीं है, बल्कि यह तो एक सतत प्रक्रिया है जिसे संपूर्ण सामाजिक, शिक्षाशास्त्रीय और सभी स्तरों पर होने वाले अन्य परिवर्तनों के प्रति संवेदनशील और उत्तरदायी होना होगा। पाठ्यचर्चा राष्ट्रीय लक्ष्यों को शैक्षिक अनुभवों में रूपांतरित करने की एक विधि है।

एन.सी.ई.आर.टी. ने राष्ट्रीय संकल्पों के अनुरूप नवीन पाठ्यचर्चा की –रूपरेखा विकसित करने का दायित्व लिया। सितंबर 1999 में परिषद् में, अपने आंतरिक संकायों के सदस्यों का एक पाठ्यचर्चा-समूह गठित करके यह कार्य शुरू किया। इस समूह ने परिषद् मुख्यालय के संकाय के प्रत्येक सदस्य और सभी क्षेत्रीय शिक्षा संस्थानों से परामर्श करके और सिद्धांतों एवं शोध पर आधारित सामग्री का अध्ययन करके विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा: परिचर्चा दस्तावेज़ तैयार किया। जनवरी 2000 में समाज के विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधियों, शिक्षाविदों, विशेषज्ञों, शिक्षकों, विश्वविद्यालयी विभागों, शोध संस्थानों, अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं, प्रशासकों को अवलोकन, उनकी टिप्पणियों और उनके सुझावों के लिए भेजा गया। इसके व्यापक स्तर पर वितरण के लिए पूरा दस्तावेज़ परिषद् के वेबसाइट पर भी पेश किया गया। इस पर पूरे देश में विस्तार और गहराई के साथ बहस और चर्चा कराई गई। क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर तो उनेक संगोष्ठियाँ आयोजित की ही गई, साथ ही कुछ संगोष्ठियाँ परिषद् ने भी इसी उद्देश्य से करवाई। अनेक संस्थानों, स्वैच्छिक संगठनों, शिक्षक-संगठनों, अभिभावक-शिक्षक संघों, विशेषज्ञ संस्थाओं और यहाँ तक कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के

छात्र-छात्राओं ने भी इस दस्तावेज़ पर संवाद किया और अपनी टिप्पणियाँ एवं सुझावों और टिप्पणियों का गहराई से अध्ययन किया गया। उनका विश्लेषण किया गया और उसके पश्चात् इस रूपरेखा को अंतिम रूप देने की प्रक्रिया में उनका यथोचित एवं यथास्थान उपयोग किया गया। इस प्रकार यह एक ऐसा समग्र दस्तावेज़ बना जिसमें पहली बार उच्चतर माध्यमिक स्तर को भी शामिल किया गया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 और प्रारंभिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या: एक रूपरेखा, 1988 में जिन मुख्य सरोकारों और चिंताओं को व्यक्त किया गया था, उन पर इस दस्तावेज़ में भी पुनः जोर दिया गया। भाषा शिक्षण और शिक्षा के माध्यम से जुड़े मुद्दे, सभी स्तरों के लिए कॉमन स्कूल संरचना की आवश्यकता, सामाजिक समरसता से जुड़े केंद्रीय मुद्दे, पंथनिरपेक्षता और राष्ट्रीय एकता और इन सबकी शैक्षिक प्रक्रिया से संबद्धता या प्रासंगिकता—ही वे मुद्दे हैं, जिन्हें इस दस्तावेज़ में भी विस्तारित किया गया है ताकि इन सरोकारों पर आवश्यक और उचित ध्यान दिया जा सके। सामान्य केंद्रिक तत्व, सतत और व्यापक मूल्यांकन, स्वतंत्रता और लचीलेपन के तत्व और व्यावसायिक शिक्षा आदि कुछ ऐसे सरोकार हैं जो पूर्व के दस्तावेजों में भी मौजूद थे। इस रूपरेखा में कुछ नए मुद्दों पर भी विशेष ध्यान देने का प्रयत्न किया गया है। जो न्यूनतम अधिगम स्तर मूल्य शिक्षा, सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के उपयोग और व्यवस्था के प्रबंधन एवं उसकी जवाबदेही से जुड़े हुए हैं।

प्रस्तुत दस्तावेज़ में आसपास तेज़ी से घटित होने वाले परिवर्तनों के संदर्भ में सुझाव और सिफारिशें दी गई हैं लेकिन उन्हें भी नीति की भावना के अनुरूप रखा गया है। पर्यावरण शिक्षा का प्राथमिक स्तर के प्रथम दो वर्षों की शिक्षा में भाषा, गणित एवं अन्य गतिविधियों के साथ समन्वय या समेकन प्राथमिक स्तर पर ही कला शिक्षा, स्वास्थ्य तथा शारीरिक शिक्षा और विषय में शिक्षा, सामाजिक विज्ञान में विषयवस्तु आधारित समझ पैदा करने वाला समेकित उपागम, विज्ञान और प्रौद्योगिकी का समेकन माध्यमिक स्तर पर गणित को जीवन के निकट लाना और वर्तमान विज्ञान-प्रयोगशालाओं में व्यावहारिक गणित के लिए स्थान नियत करना आदि कुछ नए तत्व हैं जो इस दस्तावेज़ के अंग हैं। इनके अतिरिक्त शिक्षकों में पूरा विश्वास जाहिर करते हुए उनके सबलीकरण और उनकी सहभागिता को योजना-निर्माण, क्रियान्वयन, पाठ्यचर्या के मूल्यांकन और पाठ्य-सामग्री के निर्माण के संबंध में पहली बार महत्वपूर्ण माना गया है। इसी प्रकार अभिभावकों और आम जनसमुदाय के प्रबोधन, सहभागिता और जवाबदेही के लिए भी सुझाव दिए गए हैं। भाषा कौशलों के मौखिक एवं श्रव्य मूल्यांकन की प्रणाली लागू करने, व्यक्तिगत और समूह में स्व-मूल्यांकन की प्रणाली अपनाने और ऐसे ही अन्य नवीन तत्वों का भी इस दस्तावेज़ में समावेश है।

भारत की समृद्ध बौद्धिक और सांस्कृतिक विरासत और विश्व सभ्यता के लिए भारतीय सभ्यता के योगदान के प्रति चेतना का भी दृढ़तापूर्वक उल्लेख किया गया है। वसुधैव कुटुंबकम् की भावना से युक्त गहरी राष्ट्रीयता एवं देशभक्ति की अनुभूति भी शिक्षार्थियों को कराई जानी आवश्यक है। इससे हमारे युवा छात्र-छात्राओं में अपने 'भारतीय' होने पर गर्व की भावना भी पुष्ट होगी और उसका औचित्य भी प्रकट होगा। इसी के साथ इस दस्तावेज़ में सभी संस्कृतियों को ग्रहण करने और अन्य सबके प्रति सहिष्णुता और सम्मान प्रकट करने के

मूल्यों पर भी जोर दिया गया है। भूमंडलीकरण के जटिल और चुनौतीपूर्ण आगमन का मुकाबला करने के लिए आवश्यक तैयारी को भी इस दस्तावेज यथोचित स्थान दिया गया है।

● शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य

शिक्षा मनुष्य को अज्ञान, तथा दुख के बंधनों से मुक्त करती है और उसे अहिंसक एवं शोषण-विहीन सामाजिक व्यवस्था की ओर ले जाती है। अतः विद्यालयी पाठ्यचर्चा के उद्देश्य हैं कि वे शिक्षार्थियों को ज्ञान अर्जित करने, समझ विकसित करने, कौशलों को विकसित करने सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने के योग्य बनाए। युवावर्ग इस देश की अत्यंत मूल्यवान निधि हैं, इसलिए शिक्षा के माध्यम से क्षमताएँ बढ़ाने के लिए उनका सबलीकरण आवश्यक है। इसलिए प्रतिमानों को बदलना आवश्यक है ताकि पाठ्यचर्चा में प्रक्रिया और विषयवस्तु की अंतर्क्रिया को महत्व दिया जा सके। इसके अतिरिक्त छात्रों के अंतरस्थ मूल्यों और संवेगात्मक बुद्धि का विकास भी एक महत्वपूर्ण पहलू है।

इस विद्यालयी पाठ्यचर्चा-2000 से छात्रों में निम्नांकित बिन्दुओं के विकास और उत्कर्ष में सहायता मिलनी चाहिए:

- भाषा की योग्यताएँ, जैसे-सुनना, बोलना, पढ़ना, और सोचना तथा मौखिक और दृश्य संप्रेषण-कौशल जो सामाजिक जीवन और दिन-प्रतिदिन के क्रियाकलापों में प्रभावी भागीदारी के लिए आवश्यक है,
- गणितीय योग्यताएँ जो तार्किक बुद्धि का विकास करे और शिक्षार्थियों को गणितीय क्रियाओं को दैनिक जीवन में लागू करने में सहायता करे,
- वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास जिसमें खोज या अनुसंधान-भावना, समस्या-हल, प्रश्न करने का साहस और वस्तुनिष्ठता जैसे गुण विद्यमान हों जो भ्रम, अंधविश्वास और भाग्यवाद को समाप्त करने की दिशा में प्रवृत्त करे, इसके साथ ही साथ भारतीय परंपरा में रचे-बसे स्वदेशी ज्ञान को संपुष्ट करते हुए बनाए रखे,
- पर्यावरण के प्राकृतिक और सामाजिक दोनों पक्षों, उनकी अंतर्क्रियात्मक प्रक्रियाओं और उनसे संबद्ध समस्याओं की समझ विकसित करे और ऐसे तरीके और साधन बताए कि पर्यावरण का संरक्षण किया जा सके,
- देश के विभिन्न भागों के भूखंडों तथा वहाँ के जनजीवन की विविधता और भारत की सामाजिक संस्कृति के प्रति समझ पैदा करे,
- देश के स्वतंत्रता-संग्राम और सामाजिक पुनरुत्थान में सभी वर्गों और क्षेत्रों के स्वतंत्रता सेनानियों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और ग्रामीण, आदिवासी और समाज के कमजोर तबकों, के लोगों के बलिदान एवं योगदान के प्रति सराहना की भावना पैदा करे और उनके आदर्शों के अनुसरण की प्रेरणा प्रदान करें,
- परिवर्तनमूलक प्रौद्योगिकी और देश की परंपरा और विरासत की निरंतरता के बीच संतुलित समन्वय की सही समझ उत्पन्न करे,
- राष्ट्रीय प्रतीकों का ज्ञान और उनके प्रति सम्मान पैदा करे तथा राष्ट्रीय अस्मिता एवं एकता जैसे आदर्शों के प्रति आकांक्षा और संकल्प प्रकट करने के लिए प्रेरित करे,

- वसुधैव कुटुंबकम् की भावना से युक्त देशभक्ति और राष्ट्रीयता की गहन अनुभूति पैदा, करे,
- देश के संदर्भ में भूमंडलीकरण, उदारीकरण और स्थानीयता के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों के संबंध में उचित समझ विकसित करे,
- व्यक्तिगत, सामाजिक, नैतिक, राष्ट्रीय और आध्यात्मिक मूल्यों और सहवर्ती गुणों का विकास करे जो किसी व्यक्ति को मानवीय और सामाजिक रूप से प्रभावशाली बनाते हैं और जीवन को सार्थकता एवं दिशा देते हैं,
- भौतिक और मानसिक रूप से स्फूर्त और मजबूत बनाने के लिए आवश्यक ज्ञान, दृष्टिकोण और आदतों का विकास करे,
- ऐसे गुणों और विशेषताओं का विकास करे जो स्व-शिक्षण, आत्म-निर्देशित शिक्षण और आजीवन शिक्षण के साथ समाज की रचना कर सके,
- ऐसी क्षमताओं का विकास करे जो न केवल सूचना-विश्लेषण करे बल्कि उन्हें ठीक से समझे, उन पर विचार करे, उन्हें आत्मसात करे और उनके प्रति अंतर्दृष्टि का विकास करे,
- उत्पादकता-वृद्धि, कार्य-संतोष की भावना, अर्थ-उत्पादन प्रणाली के लिए आवश्यक कठोर-परिश्रम की तत्परता, उद्यमशीलता और मानवीय श्रम के प्रति सम्मान जैसे मूल्यों का विकास करे,
- बड़े परिवारों और अति जनसंख्या के प्रति आलोचनात्मक विचार करे और जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण की ज़रूरत को समझे, और
- स्वस्थ यौन संबंधी मुद्दों के प्रति उचित दृष्टिकोण विकसित कर स्त्री-पुरुषों में एक दूसरे के बीच सम्मानपूर्ण संबंध विकसित करे।

● शैक्षणिक नीतियाँ

पाठ्यचर्या के प्रभावी उपयोग और पाठ्यचर्यागत उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए छात्रों की गतिविधियों का संयोजन उपयुक्त युक्तियों के द्वारा इस प्रकार किया जाए कि छात्रों की अधिगम क्रियाकलापों के लिए अधिक अवसर मिलें। शिक्षण युक्तियाँ कई प्रकार की हो सकती हैं, जैसे-अवलोकन, सामग्री और सूचनाओं का संकलन, प्रदर्शन और प्रयोग, प्रोजेक्ट कार्य, फील्डवर्क और संग्रहालयों, मेलों औद्योगिक प्रतिष्ठानों तथा ऐतिहासिक महत्व के स्थानों की शैक्षिक यात्राएँ। खेलकूद, सामुदायिक गायन में भागीदारी, भूमिका-अभिनय, नाटक, परिचर्चा, वाद-विवाद, समस्या-समाधान, खोजपूर्ण शिक्षण, सृजनात्मक लेखन और पूरक वाचन भी संपूर्ण शैक्षिक युक्तियाँ के महत्वपूर्ण अंग होंगे।

किसी विशेष नीति का उपयोग करते समय अनेक तत्वों पर विचार करना होगा, जैसे-छात्रों की क्षमताएँ, संसाधनों की उपलब्धता, आरंभिक व्यवहार, विद्यालयी पर्यावरण, प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य, विषयवस्तु की प्रकृति और स्वयं शिक्षकों द्वारा की जाने वाली तैयारी एवं उनका विषयों पर अधिकार।

शिक्षण को सार्थक और ठोस बनाने के लिए प्राकृतिक और मानवीय दोनों ही प्रकार के निकटस्थ पर्यावरण का उपयोग होना चाहिए। प्रभावशाली शिक्षण तभी होता है जब शिक्षक

छात्रों को सीखने की प्रक्रिया में शामिल करें और यह कार्य सुनने की प्रक्रिया से छात्रों को ऊपर ले जाकर चिंतन, तर्क और स्वयं करके सीखने की प्रक्रिया में शामिल करके संपन्न करना होगा। स्वाध्याय कौशल के विकास के लिए पुस्तकालय एवं स्रेत केंद्रों के प्रयोग को प्रोत्साहित करना होगा।

अध्ययन-अध्यापन की युक्ति में नियमित रूप से प्रतिपुष्टि प्राप्त करना एक अंतर्निहित घटक है। नियमित प्रतिपुष्टि के लिए सतत और व्यापक मूल्यांकन की भूमिका महत्वपूर्ण है। इसका उपयोग उपचारात्मक शिक्षण के लिए होना चाहिए।

अध्ययन-अध्यापन की युक्ति में नियमित रूप से प्रतिपुष्टि प्राप्त करना एक अंतर्निहित घटक है। नियमित प्रतिपुष्टि के लिए सतत और व्यापक मूल्यांकन की भूमिका महत्वपूर्ण है। इसका उपयोग उपचारात्मक शिक्षण के लिए होना चाहिए।

मंद, औसत और तीव्र गति से सीखने वाले भिन्न-भिन्न छात्रों के लिए भिन्न-भिन्न शिक्षण नीतियाँ जरूरी हैं। निदानात्मक और उपचारात्मक शिक्षण का उपयोग मंदगति के छात्रों के लिए आवश्यक है। ज्ञान-संवर्धन की सामग्री और लक्ष्य निर्देशित अध्ययन-अध्यापन की युक्तियाँ तीव्र गति से सीखने वाले छात्रों की मदद करेंगी। सहशैक्षिक क्षेत्रों के शिक्षण में उचित महत्व देना। अनेक विद्यालयी गतिविधियाँ समुचित योजना एवं सुनियोजित लक्ष्यों के साथ आयोजित की जा सकती हैं, जैसे-प्रातःकालीन सभा, सांस्कृतिक और मनोरंजक क्रियाकलाप, विद्यालय की सजावट एवं सौंदर्यीकरण, समुदायिक जीवन के क्रियाकलाप, राष्ट्रीय महत्व के दिवसों को मनाना, विशेष दिवस और सप्ताह तथा सृजनात्मक कार्यक्रम।

बच्चों के बौद्धिक, संवेगात्मक और आध्यात्मिक विकास के लिए मातृभाषा सर्वाधिक महत्वपूर्ण माध्यम है। मातृभाषा केवल इसलिए 'मातृभाषा' नहीं है कि वह माता की भाषा है बल्कि इसलिए कि वह माँ की ही तरह है। अतः मातृभाषा बच्चों के पोषण एवं मानसिक और संवेगात्मक निर्माण के लिए एक अत्यंत महत्वपूर्ण केंद्रीय तत्व है। उनकी समझ, उनके अवबोध, उनकी प्रतिक्रियाएँ, सृजनात्मक अभिव्यक्तियाँ, चिंतन और विश्लेषण सभी कुछ अधिकतम मातृभाषा के माध्यम से ही तो विकसित होते हैं। इसलिए विद्यालयी शिक्षा के सभी स्तरों पर मातृभाषा के माध्यम से शिक्षण करना एक स्वाभाविक और आदर्श स्थिति होगी।

जिन छात्रों की मातृभाषा क्षेत्रीय भाषा या राज्य की भाषा है, वहाँ वहीं की भाषा विद्यालयी शिक्षा के सभी स्तरों या कम-से-कम प्राथमिक स्तर के अंत तक शिक्षा का माध्यम होगी। जहाँ छात्रों की मातृभाषा राज्य या क्षेत्र की भाषा से अलग है, वहाँ क्षेत्रीय भाषा को तीसरी कक्षा और उससे आगे के स्तर से माध्यम के रूप में अपनाया जा सकता है। प्रारंभिक वर्षों में छात्रों की मातृभाषा का उपयोग इस प्रकार हो कि छात्र बड़ी सरलता के साथ मानक मातृभाषा (क्षेत्रीय भाषा) में संक्रमण या प्रवेश कर सकें और क्षेत्रीय भाषा के माध्यम से शिक्षण जल्दी-से-जल्दी शुरू हो सके।

- **पाठ्यवस्तु संगठन**

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2000 में **कक्षा 1 तथा 2** में अग्रलिखित को शामिल किया गया है—

- (अ) एक भाषा—मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा
- (ब) गणित
- (स) पर्यावरणीय अध्ययन
- (द) कार्य शिक्षा (कार्य अनुभव) कला तथा स्वास्थ्य क्रियाकलाप

कक्षा 3 से 5 तक

- (अ) एक भाषा—मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा
- (ब) अंग्रेजी
- (स) गणित
- (द) पर्यावरणीय अध्ययन
- (य) कार्य शिक्षा (कार्य अनुभव) कला वस्वास्थ्य क्रियाकलाप

कक्षा 6 से 8 तक

- (अ) तीन भाषाएँ
- (ब) गणित
- (स) विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी
- (द) सामाजिक विज्ञान
- (य) कार्य शिक्षा (कार्य अनुभव), कला शिक्षा, स्वास्थ्य तथा शारीरिक शिक्षा

- **आंकलन के तौर तरीके**

सफलतापूर्वक सीखने के लिए बिना उच्चस्तरीय मूल्यांकन के अध्यापन संभव नहीं है। इसलिए अध्यापन और सीखने की प्रक्रिया में मूल्यांकन का अंतर्निहित होना आवश्यक है। यह जितना ही अधिक होगा, उतने ही बेहतर सीखने के परिणाम मिलेंगे। इसलिए मूल्यांकन प्रणाली की रचना ऐसी होनी चाहिए कि शिक्षक जो पढ़ाते हैं और छात्र जो सीखते हैं, उसे प्रभावित करने का यह शक्तिशाली माध्यम बने। लेकिन साथ ही यह भी सुनिश्चित करना होगा कि मूल्यांकन मानवीय हो और वह शिक्षार्थी को एक जिम्मेदार और उत्पादक नागरिक की तरह विकसित होने के काबिल बनाए। केवल इतना ही नहीं, मूल्यांकन को लगातार पाठ्यवस्तु की प्रभावशीलता, कक्षाई प्रक्रियाओं और प्रत्येक शिक्षार्थी के विकास के बारे में प्रतिपुष्टि (फीडबैक) देनी होगी जो मूल्यांकन प्रक्रिया की उपयुक्तता के अतिरिक्त होगी। इसलिए यह इस हद तक लचीली हो कि उसका प्रयोग किया जा सके और उसका शिक्षार्थी—समूहों की विशिष्ट स्थितियों एवं आवश्यकताओं के अनुसार अनुकूलन किया जा सके। मूल्यांकन विभिन्न प्रकार के निर्णय लेने के उद्देश्य से संज्ञानात्मक और सह-संज्ञानात्मक दोनों ही क्षेत्रों में छात्रों के सीखने की गति और उपलब्धियों के बारे में साक्ष्यों का संकलन, विश्लेषण और व्याख्या करने की एक क्रमबद्ध प्रक्रिया है। इस प्रकार मूल्यांकन में सूचनाओं का संग्रह, विश्लेषण एवं निर्णय लेना निहित है।

संज्ञानात्मक और सह-संज्ञानात्मक दोनों ही क्षमताओं के विकास के लिए विद्यालयों में मूल्यांकन का लाभदायक तरीकों से प्रयोग होना चाहिए। इसके लिए मूल्यांकन के विकासात्मक और समग्र दोनों रूपों का प्रयोग किया जाना चाहिये।

आवश्यक हो जाते हैं। जहाँ शिक्षण के दौरान छात्रों के सीखने की प्रक्रिया को बेहतर बनाने के लिए विकासात्मक मूल्यांकन का प्रयोग किया जाता है वहीं विकासात्मक (फार्मेटिव) मूल्यांकन किया जाता है और शैक्षणिक सत्र के अंत में छात्र को अगली कक्षा में पहुँचाने के लिए समग्र मूल्यांकन का प्रयोग किया जाता है। विकासात्मक मूल्यांकन का मुख्य उद्देश्य शिक्षण-प्रक्रिया का मॉनिटरिंग करने के लिए होता है। जिससे यह निश्चित होता है कि योजनानुसार शिक्षण हो रहा है या नहीं। इससे विकासात्मक मूल्यांकन के परिणाम दोनों ही प्रकार के छात्रों (कुशाग्र और मंद) के लिए उपयोगी होते हैं। इनसे धीमी गति से सीखने वाले छात्रों के लिए उपचारात्मक उपाय लागू किए जा सकते हैं और कुशाग्र छात्रों का विशेष ज्ञान-संवर्धन किया जा सकता है। दूसरी ओर समग्र मूल्यांकन यह तय करता है कि योग्यता के आधार पर छात्रों का वर्गीकरण कर उन्हें किस जगह रखा जाए और उनकी भावी सफलता तथा अगली कक्षा में प्रोन्नति के बारे में पहले से ही अवगत करा देता है।

विकासात्मक और समग्र मूल्यांकन से संगृहीत साक्ष्यों का विश्लेषण और व्याख्या तीन प्रकार से की जा सकती है—पहला, छात्रों की प्रगति का स्वयं उनके ही संदर्भ में आकलन (स्वयं संदर्भित), दूसरा, शिक्षक द्वारा निर्धारित कसौटियों के संदर्भ में आकलन (कसौटी संदर्भित) और तीसरा, साथी समूहों द्वारा की गई प्रगति के संदर्भ में आकलन (मानदंड संदर्भित)।

मूल्यांकन द्वारा छात्रों के सर्वांगीण विकास को सुगम बनाया जाना है, इसलिए पहली कक्षा से बारहवीं कक्षा तक छात्रों के विकासात्मक और समग्र दोनों ही प्रकार के मूल्यांकनों के लिए विद्यालय आधारित छात्र मूल्यांकन प्रणाली वांछनीय है। इस दृष्टि से पूर्व-प्राथमिक स्तर पर मूल्यांकन पूर्ण रूप से विकासात्मक होना चाहिए और केवल दसवीं और बारहवीं कक्षा के अंत में बोर्डों द्वारा अंतिम परीक्षाएँ ली जानी चाहिए जो यथासंभव शैक्षणिक विषयों से ही संबंधित हों। विद्यालय आधारित मूल्यांकन (जो कि सतत और व्यापक मूल्यांकन के रूप में होगा) के अंतर्गत शैक्षिक विषय-क्षेत्र तो रहेंगे ही, उनमें छात्रों के समग्र विकास के सह-शैक्षिक क्षेत्र भी शामिल होंगे। दसवीं बारहवीं कक्षाओं में सह-सह-शैक्षिक क्षेत्रों में छात्रों के कार्य का आकलन विद्यालयों द्वारा किया जाएगा और विद्यालय इस आकलन को बोर्ड को शैक्षिक विषयों की अंक सूची या ग्रेड-कार्ड में इसे सम्मिलित करने के लिए भेजेंगे।

वर्तमान रूप में परीक्षाएँ छात्रों की योग्यता का सही मापन नहीं करतीं, क्योंकि वे तो केवल वर्ष भर में छात्र जो पाठ्यवस्तु सीखने की कोशिश करते हैं, उसके एक अंश-भर का ही मापन करती हैं। परीक्षाएँ बहुविध मूल्यांकन तकनीकों के प्रयोग के भी अवसर नहीं देती हैं, जैसे-मौखिक, तकनीक, अवलोकन, प्रोजेक्ट, असाइनमेंट या कार्य आवंटन आदि। परीक्षाओं में तो केवल लिखित जाँच का ही उपयोग किया जा रहा है।

वर्तमान परीक्षा प्रणाली की दूसरी कमी यह है कि परिणाम अंकों में घोषित किए जाते हैं, जो परीक्षक की आत्मपरकता से लेकर 101 पाइंट के मापदंड की अंतर्निहित सीमा तक अनेक अपूर्णताओं से ग्रस्त रहती हैं जो न तो शून्य स्तर की कसौटी को संतुष्ट करते हैं और न ही 100 अंकों की पूर्णता को।

दसवीं कक्षा की सार्वजनिक परीक्षा का आतंक पूरे समाज पर इस हावी रहता है कि यह स्कूली शिक्षा के प्रारंभिक स्तर तक व्याप्त हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप छोटे बच्चों की तैयारी भी शुरू से बोर्ड की परीक्षा प्रणाली के अनुसार कराई जाती है और निदान तथा उपचार जैसे महत्वपूर्ण तत्व मुश्किल से ही इस परीक्षा प्रणाली का हिस्सा बन पाते हैं। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए देश के लिए यह उपयुक्त और सामयिक कदम होगा कि वह कार्य योजना, 1992 (पी.ओ.ए. 1992) में निहित इस अनुशंसा पर ध्यान दे—“बाह्य परीक्षाओं के प्रभाव को कम करना चाहिए”

वर्तमान परीक्षा प्रणाली का एक दोष यह भी है कि इसमें प्रत्येक क्षेत्र में बढ़ती हुई प्रतियोगिता के कारण समाज ने परीक्षा-परीणामों को अनावश्यक महत्व दे रखा है। इससे छात्रों के दिमाग में इस कदर मनोवैज्ञानिक डर और तनाव पैदा हो जाते हैं कि अनेक प्रकार की बुराइयों में व्याप्त हो जाती हैं और असफल होने का भय इस सीमा तक चला जाता है कि कई बार छात्र आत्महत्या तक कर लेते हैं।

- मूल्यांकन की प्रकृति मानवीय होगी। यह मूल्यांकन छात्रों को सामाजिक इकाई के रूप में विकसित होने में सहायक होगा और उन्हें अनावश्यक पीड़ा, चिंता परेशानी और अपमान से बचाएगा,
- मूल्यांकन उन्हीं शिक्षकों की जिम्मेदारी होगी जो छात्रों को पढ़ाते हैं और जो उनमें आवश्यक स्वस्थ गुणों और मनोवृत्तियों के विकास के लिए भी उत्तरदायी होते हैं,
- मूल्यांकन अपने उद्देश्य के प्रति हमेशा एक-समान और सुसंगत होगा और छात्रों की योग्यता का विश्वसनीय एवं वैध मापन उपलब्ध कराएगा,
- मूल्यांकन प्रत्येक अधिगम-प्रयास के परिणाम को भी बिंबित करेगा और सभी छात्रों को अपनी व्यक्तिगत योग्यता प्रकट करने के समान अवसर देगा। इस प्रकार मूल्यांकन विविधतायुक्त और निर्बाध होगा और मापन की बहुविध तकनीकों का उपयोग करेगा,
- मूल्यांकन अध्ययन-अध्यापन की प्रक्रिया में ही निहित होगा और शिक्षा की संपूर्ण अवधि तक जारी रहेगा,
- मूल्यांकन छात्रों की पृष्ठभूमि और पूर्व-अनुभवों पर भी विचार करेगा,
- विशिष्ट आवश्यकता वाले छात्रों के लिए वैकल्पिक मूल्यांकन-प्रक्रिया अपनानी होगी और मूल्यांकन को मानवीय, छात्र-मित्रवत और लचीला बनाना होगा,
- ग्रेडिंग या श्रेणीकरण की प्रक्रिया और उसे प्रस्तुत करने का तरीका उपयुक्त और सभी विश्वसनीय और आस्थापूर्ण बनाएगा,

- आधुनिक प्रौद्योगिकी केवल मूल्यांकन प्रणाली के प्रबंधन में सुधार के लिए ही नहीं बल्कि कंप्यूटर नेटवर्क के माध्यम से छात्रों के परीक्षण में भी प्रयुक्त होगी।

भाषा नीतियाँ

4.5.4 राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा 2005 का विश्लेषण।

भारत एक स्वतंत्र लोकतांत्रिक देश है इसमें असाधारण रूप से जटिल सांस्कृतिक विविधता और लोकतांत्रिक मूल्यों व सर्वजन कल्याण के लिए प्रतिबद्धता है। वर्ष 1986 में जब शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति को संसद द्वारा स्वीकृति मिली थी, तभी से पाठ्यचर्चा पुनरुपांकित करने के सभी प्रयासों का उद्देश्य रहा है – शिक्षा की एक राष्ट्रीय प्रणाली की रचना करना।

शिक्षा के मूल सरोकार आज भी निस्संदेह महत्व रखते हैं ये हैं— बच्चों को इतना सक्षम बनाना कि वे जीवन का अर्थ समझ सकें और अपनी योग्यताओं का विकास कर सकें, अपने जीवन का एक उद्देश्य निश्चित करें और उसे प्राप्त करने का प्रयास करें तथा दूसरे व्यक्ति को भी ऐसा करने का अधिकार दें। परस्पर निर्भरता को रेखांकित करना, और जैसा टैगोर कहते हैं कि जब हम स्वयं को दूसरों के माध्यम से अनुभव करें, तभी हमें सबसे बड़ी खुशी मिलती है। साथ ही विभिन्न सांस्कृतिक एवं सामाजिक—आर्थिक पृष्ठभूमियों से आए बच्चों में, जो ज्यादा से ज्यादा संख्या में स्कूलों का हिस्सा बन रहे हैं, समानता की अवधारणा को पुख्ता करना भी आवश्यक है।

शिक्षा को उन मूल्यों को प्रसारित करने में सक्षम होना चाहिए जो शांति, मानवता और सांस्कृतिक—विविधता वाले समाज में सहिष्णुता को पोषित करें। यह दस्तावेज ऐसी रूपरेखा प्रस्तुत करता है जिसके अंतर्गत शिक्षक व स्कूल उन अनुभवों का चुनाव कर सकते हैं और उनकी योजना बना सकते हैं, जो उनके अनुसार बच्चों के लिए लाभप्रद हो सकते हैं। शैक्षिक उद्देश्यों को पूरा करने के लिए पाठ्यचर्चा की परिकल्पना ऐसी संरचना के रूप में की गई है, जो इन आवश्यक अनुभवों को स्पष्ट रूप से मुखरित कर सके।

शिक्षा बिना बोझ के' (लर्निंग विदाउट बर्डन) ने पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तकों की रूपरेखा में विशेष परिवर्तन लाने की सिफारिश की और इस बात की भी सिफारिश की, कि समाज की इस मानसिकता में बदलाव आना चाहिए जो बच्चों पर उग्र रूप से प्रतिस्पर्द्धा बनने व असामान्य योग्यता दर्शाने के लिए दबाव डालती है। अध्यापन को बच्चे के रचनात्मक स्वभाव के सदुपयोग का माध्यम बनाने के लिए इस रिपोर्ट ने सिफारिश की कि स्कूली पाठ्यचर्चा और परीक्षा व्यवस्था दोनों में, जो बच्चों को बहुत—सी जानकारी रटने और उसे उगलने के लिए विवश करती है, मूलभूत परिवर्तन किए जाएँ। यांत्रिक तरीके से परखे जाने के लिए सीखने की प्रक्रिया बच्चे से बच्चा होने का सुख छीन लेती है तथा स्कूली जानकारी को प्रतिदिन के अनुभव से अलग कर देती है। इस गहन संरचनात्मक समस्या से निपटने के लिए मौजूदा दस्तावेज में 'लर्निंग विदाउट बर्डन' की अंतर्दृष्टि व सिफारिशों की सहायता ली गई है व उनका विस्तार भी किया गया है। नुस्खे देने की जगह यह दस्तावेज पाठ्यचर्चा व पाठ्यपुस्तकों की रूपरेखा तैयार करने व परीक्षा प्रणाली के सुधार में शामिल विभिन्न

शिक्षकों, प्रशासनिक अधिकारियों व अन्य एजेंसियों को कुछ तर्कपूर्ण चुनाव व निर्णय करने में सक्षम बनाने का प्रयास है। यह उन्हें नवाचार एवं स्थानीय परिवेश पर आधारित कार्यक्रम विकसित करने तथा उन्हें लागू करने में भी सहायता देगा। समकालीन सामाजिक यथार्थ में पाठ्यचर्या के नवीनीकरण की प्रक्रिया में आने वाली चुनौतियों को संदर्भ में रख कर यह दस्तावेज उन विशेष समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित करता है जिनके लिए कल्पनाशील प्रतिक्रियाओं की आवश्यकता है।

इस पाठ्यचर्या के विकास हेतु निम्नालिखित मार्गदर्शक सिद्धांतों का प्रस्ताव रखा गया है

- ज्ञान को स्कूल के बाहर के जीवन से जोड़ना, पढ़ाई रटंत प्रणाली से मुक्त हो, यह सुनिश्चित करना,

- पाठ्यचर्या का इस तरह संवर्धन कि वह बच्चों को चहुँमुखी विकास के अवसर मुहैया करवाए बजाए इसके कि वह पाठ्यचर्या—केंद्रित बन कर रह जाए, परीक्षा को अपेक्षाकृत अधिक लचीला जोड़ना और

- एक ऐसी अधिभावी पहचान का विकास जिसमें प्रजातांत्रिक राज्य—व्यवस्था के अंतर्गत राष्ट्रीय चिंताएँ समाहित हों। वर्तमान संदर्भ में कुछ नए बदलाव, नए सरोकार पैदा हुए हैं जिन्हें पाठ्यचर्या को संबोधित करना ही चाहिए।

● शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा—2005 के लक्ष्य एवं उद्देश्य निम्नवत हैं—

शिक्षा के लक्ष्यों में व्यापक दिशानिर्देश हैं जो शैक्षणिक प्रक्रियाओं के तय किए गए आदेशों और स्वीकृत सिद्धांतों से संगति बिठाने में मदद करते हैं। शिक्षा के लक्ष्य समाज की मौजूदा महत्वाकांक्षाओं व 'जरूरतों' के साथ शाश्वत मूल्यों तथा समाज के तात्कालिक सरोकारों सहित वृहद मानवीय आदर्शों को भी प्रतिबिंबित करते हैं। किसी भी खास समय और स्थान के संदर्भ में इन्हें व्यापक और शाश्वत मानवीय आकांक्षाओं और मूल्यों की समकालीन और प्रासंगिक अभिव्यक्ति कहा जा सकता है।

शैक्षिक लक्ष्य स्कूलों व अन्य शैक्षिक संस्थानों द्वारा चलाई जा रही विभिन्न गतिविधियों को एक रचनात्मक साँचे में ढाल कर उन्हें 'शैक्षिक' होने का विशिष्ट चरित्र प्रदान करते हैं। एक शैक्षिक उद्देश्य शिक्षक की इस रूप से मदद करता है कि वह अपनी अभी की कक्षा की गतिविधि को भविष्य के अभीष्ट परिणाम से जोड़ सके

एक उद्देश्य को पूर्व—दृष्टि भी देनी चाहिए। ऐसा तीन तरीकों से किया जा सकता है: **पहला**, निश्चित परिस्थितियों का सूक्ष्म अध्ययन करके यह देखना कि लक्ष्य तक पहुँचने के लिए क्या साधन उपलब्ध हैं और उस मार्ग में क्या बधाएँ हैं। इसमें बच्चों का बहुत सूक्ष्म अध्ययन करने और यह देखने की आवश्यकता होगी कि विभिन्न अवस्थाओं में वे क्या—क्या सीख सकते हैं। **दूसरा**, यह पूर्व दृष्टि उस क्रम की ओर इंगित करती है जो कारगर होगा। **तीसरा**, यह विकल्पों के चुनाव की संभावनाएँ भी खोलती है। इसलिए, एक लक्ष्य के साथ हम अपेक्षाकृत अधिक समझदारी से काम करते हैं।

सामाजिक मूल्यों, लोकतंत्र, समानता, न्याय, स्वतंत्रता, परोपकार, धर्मनिरपेक्षता, मानवीय गरिमा व अधिकार तथा दूसरे के प्रति आदर जैसे मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता। शिक्षा का उद्देश्य कारण और समक्ष परे आधारित इन्हीं मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता का निर्माण करना होना चाहिए। इसलिए पाठ्यचर्या में स्कूलों के लिए वह गुंजाइश जरूर होनी चाहिए ताकि वह संवाद एवं विमर्श के लिए जगह पैदा करते हुए बच्चों में इस तरह की प्रतिबद्धता का निर्माण कर सके।

बच्चे की रचनात्मक अभिव्यक्ति और सौंदर्यात्मक आस्वादन की क्षमता के विस्तार के लिए साधन और अवसर मुहैया कराना शिक्षा का अनिवार्य कर्तव्य है।

विद्यार्थी को सौंदर्य के विभिन्न रूपों को समझने व उनका विवेचन करने में समर्थ बनाने का प्रयास होना चाहिए।

● शैक्षणिक नीतियाँ

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 अग्रलिखित शिक्षण नीतियों का उल्लेख किया गया है—

- ✓ अध्यापन और अध्ययन संबंधी हमारी समझ का पुनः अभिमुखीकरण।
- ✓ विद्यार्थियों के विकास एवं अधिगम के संबंध में सर्वांगीण दृष्टिकोण।
- ✓ कक्षा में सभी विद्यार्थियों के लिए समावेशी वातावरण तैयार करना।
- ✓ ज्ञान निर्माण में विद्यार्थियों की सहभागिता और रचनात्मकता को बढ़ावा।
- ✓ प्रयोगात्मक माध्यमों द्वारा सक्रिय शिक्षण।
- ✓ पाठ्यचर्या की प्रक्रियाओं में बच्चों की सोच, जिज्ञासा और प्रश्नों के लिए पर्याप्त स्थान।
- ✓ ज्ञान को अनुशासनिक सीमाओं के पार जोड़ते हुए ज्ञान के अन्तर्दृष्टिपूर्ण निर्माण के लिए एक व्यापक ढाँचा प्रदान करना।
- ✓ विद्यार्थियों की सहभागिता के क्षेत्र— अवलोकन, अन्वेषण, विश्लेषणात्मक विमर्श आदि महत्वपूर्ण ज्ञान की विषय-वस्तु को शिक्षण में शामिल करना।
- ✓ सामाजिक-सांस्कृतिक यथार्थ पर विवेचनात्मक परिप्रेक्ष्य को विकसित करने वाली प्रक्रियाओं को पाठ्यचर्या में स्थान देने की आवश्यकता।
- ✓ स्थानीय ज्ञान एवं बच्चों के अनुभव पाठ्यपुस्तकों और अध्यापन प्रक्रियाओं के महत्वपूर्ण अंग हैं।
- ✓ पर्यावरण संबंधी परियोजनाओं से जुड़े विद्यार्थी ऐसे ज्ञान के निर्माण में अपना योगदान दे सकते हैं जो भारतीय पर्यावरण का एक पारदर्शी, सार्वजनिक आंकड़ा-आधार तैयार करने में सहायक हो।
- ✓ स्कूल के वर्ष बच्चों की तीव्र वृद्धि का दौर होता है, उनकी क्षमताओं, अभिरूचियों व दृष्टिकोण में काफी बदलाव आते हैं। इसलिए विषयवस्तु के चुनाव एवं व्यवस्था को तथा ज्ञान निर्माण की प्रक्रियाओं को उनके हिसाब से अनुकूलित करना चाहिए।

● पाठ्यवस्तु संगठन

स्कूली पाठ्यचर्या में चार सुपरिचित क्षेत्रों—

- भाषा
- गणित
- विज्ञान और
- समाज विज्ञान में महत्वपूर्ण परिवर्तनों का सुझाव दिया गया है।

इस प्रकार निम्नानुसार पाठ्यपुस्तकों की अनुशंसा की गई है—

- भाषा
 - गणित
 - विज्ञान
 - सामाजिक विज्ञान
 - कला शिक्षा
 - स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा
 - काम और शिक्षा (कार्य)
 - शांति के लिए शिक्षा
 - आवास और सीखना
 - अध्ययन और आकलन
- भाषा में त्रिभाषा फॉर्मूले को लागू करने के फिर से प्रयास का सुझाव दिया गया है जिसमें आदिवासी भाषाओं सहित बच्चों की मातृभाषाओं को शिक्षा के माध्यम के रूप में स्वीकृति देने पर जोर है प्रत्येक बच्चे में बहुभाषिक प्रवीणता विकसित करने के लिये भारतीय समाज के बहुभाषिक चरित्र को एक संसाधन के रूप में देखना चाहिए जिसमें अग्रजी में प्रवीणता शामिल है
 - गणित की शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जिससे बच्चों के वे संसाधन समृद्ध हो जो चिंतन और तर्क में अभूर्तना की संकल्पना करने और उनका व्यवहार करने में समस्याओं को सूत्रबद्ध करने और सुलझाने में उनकी सहायता करें। गणित में सफलता को हर बच्चे के अधिकार की तरह देखा जाना चाहिये। इसके लिये गणित के दायरे को और विस्तृत करने और दूसरे विषयों से जोड़ने की जरूरत है। हर स्कूल को कंप्यूटर, हार्डवेयर, साफ्टवेयर और कनेक्टिविटी मुहैया कराने जैसी ढांचागत चुनौतियों का सम्मना, करने की जरूरत है
 - विज्ञान के शिक्षण में इस तरह की तब्दीली की जानी चाहिये कि यह हर बच्चे को अपने रोज के अनुभवों को जाचने और उनका विश्लेषण करने में सक्षम बनाये।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् ने सन् 1976 में विभिन्न कक्षाओं के लिए पाठ्यचर्यायें (Syllabus), पाठ्यपुस्तकें व पाठ्यचर्याओं की आलोचना अध्यापकों, अभिभावकों छात्रों व शिक्षाविदों के द्वारा की गई। विषयों की अधिक संख्या, पाठ्यपुस्तकों

की अधिक संख्या व विस्तीर्ण होना, तथा शिक्षण अधिगम में कार्यानुभव को उचित स्थान न मिल पाने के कारण पाठ्यक्रम का पुस्तकीय बने रहना इत्यादि मुद्दों को लेकर इस पाठ्यक्रम की आलोचना की गई थी तब जनता सरकार ने सन् 1977 में डा० ईश्वर भाई पटेल की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। इस समिति को “दस वर्षीय स्कूल पाठ्यक्रम समीक्षा समिति” अथवा पटेल समिति के नाम से पुकारा जाता है।

- **आंकलन के तौर तरीके**

भारतीय शिक्षा में मूल्यांकन शब्द परीक्षा, तनाव और दुर्निश्चिता से जुड़ा हुआ है। पाठ्यचर्या की परीभाषा और नवीनीकरण के सभी प्रयास विफल हो जाते हैं, अगर वे स्कूली शिक्षा प्रणाली में जड़ें जमाएँ मूल्यांकन और परीक्षा तंत्र के अवरोध से नहीं जूझ सकते। हमें परीक्षा के उन दुष्प्रभावों की चिंता है जो सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को सार्थक बनाने और बच्चों के लिए आनंददायी बनाने के प्रयासों पर पड़ते हैं। वर्तमान में बोर्ड की परीक्षाएँ स्कूली वर्षों में होने वाले हर आकलन और हर तरह के परीक्षण को नकारात्मक रूप से ही प्रभावित करती है। इसमें शाला पूर्व-स्तर में होने वाला आकलन और परीक्षण भी शामिल हैं

एक अच्छी मूल्यांकन और परीक्षा पद्धति सीखने की प्रक्रिया का अभिन्न अंग बन सकती है जिसमें शिक्षार्थी और शिक्षातंत्र दोनों को ही विवेचनात्मक और आलोचनात्मक प्रति पुष्टि से फायदा हो सकता है।

- **भाषा नीतियाँ**

- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या में भाषा के वृहद रूप की पहचान करने की समझ विकसित करने के लिए कहा गया है, जिसमें इस-बारह वर्ष तक भाषा पढ़ने के बाद विद्यार्थी में सप्रेषण के कौशल के साथ, परिस्थिति के अवलोकन, उसकी जाँच-पड़ताल और विश्लेषक के रूप में सामंजस्य करने के कौशल का विकास भी हो जाए। वह कुशल पाठक, लेखक, श्रोता और आलोचक भी उनमें हो सके।
- कही या लिखी गई बात को आँख मूंदकर स्वीकार करने की बजाय, विद्यार्थी उसे आलोचनात्मक दृष्टि से परखें और उस पर प्रासंगिक सवाल उठाएँ।
- परिवेश और समाज के विभिन्न पहलुओं का वैज्ञानिक विश्लेषण कर पाएँ।
- अपने आसपास बिखरी कला को सहेज कर उसमें सृजनशीलता ला पाएँ और उनके काम में कलात्मकता झलके।
- अल्पसंख्यकों के प्रति संवेदनशील हों और लैंगिक समानता उनकी सोच और व्यवहार में झलकती हो।

भाषा की पाठ्यपुस्तक — पुस्तकें साधन के रूप में कक्षा-दर-कक्षा भाषा की ताकत बढ़ाने के लिए उपयोगी हो, इसके लिए उनमें कथात्मक और जानकारी परक रचनाओं की विविधताओं में कहानी, कविता, संस्मरण, आदि प्रचलित विधाएँ तो होगी उसके अतिरिक्त अखबारी लेखन, विज्ञापन, नारे, कार्टून, संवेदनशील भाषण, भेंट वार्ताएँ, घोषणाएँ, रहस्य रोमांस जैसी सामग्री का भी समावेश हो। चुनी गई रचनाओं में कम से कम बीस प्रतिशत रचनाएँ स्थानीय भारतीय भाषाओं और विदेशी भाषाओं का समावेश हों।

- कक्षा 9–10 तथा 11–12 के लिए मातृभाषा एवं द्वितीय भाषा में एक पुस्तक व्यावहारिक व्याकरण की तैयार की जा सकती है, जो वर्णनात्मकता न होकर विश्लेषणात्मक हो। यह पुस्तक अध्यापकों के लिये स्रोत सामग्री का कार्य करेगी।
- एक कक्षा में चर्चित बिन्दुओं की चर्चा दूसरी कक्षाओं में जारी रहे, जिससे मद्द्हूहलूब बनी रहे।
- पुस्तक में कई नवीन युक्तियों को प्रयोग में लाया जा सकता है, जैसे क्लोज टेस्ट, शब्द कड़ी, अंत्याक्षरी आदि।
- पुस्तकों में राष्ट्रीय मूल्यों के विकास के लिए महापुरुषों के जीवन्त प्रसंगों को सभी कक्षाओं का आवश्यक अंग बनाया जाए, जिसे भाषा की पुस्तकों के साथ सभी विषयों में समाहित करने के प्रयास करें।

भाषा की शिक्षण युक्तियाँ— बच्चों को अक्षरों की बजाय उनके परिचित शब्द भंडार से हिंदी सिखाने की शुरुआत करना जरूरी है। साथ ही स्थानीय भाषा में गीत कविताओं की सहायता से भाषा संरचना के अवसर दिए जाने चाहिए। विविध संस्कृतियों का परिचय, रोल प्ले और छोटी-छोटी फिल्में दिखाकर करना और उन पर चर्चा कराते हुए विचार अभिव्यक्ति को प्रोत्साहित करना भी हमारी शिक्षण युक्तियों में समाहित हो।

मूल्यांकन — मूल्यांकन का 30 प्रतिशत भाग आंतरिक परीक्षण पर आधारित हो, जिसमें हिन्दी भाषा की सहज समझ को परखा जा सके तथा 70 प्रतिशत भाग बाह्य परीक्षा से आकलन हो जिससे रटने की आदत को हतोत्साहित किया जा सके।

बोध प्रश्न

- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद ने सन् 1975 में कौन सा दस्तावेज प्रकाशित किया?
.....
.....
- हार्ने के अनुसार पाठ्यचर्या क्या है?
.....
.....
- सिलेबस और केरीकुलम में मुख्य अन्तर क्या है?
.....
.....
- सामान्य केन्द्र (कामन कोर) में कौन-कौन से अनिवार्य तत्व शामिल है?
.....
.....
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति-प्रोग्राम ऑफ एक्शन में कौन सा विचार प्रस्तुत किया था?
.....
.....
.....

4.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूप रेखा, 1975, 1988, 1998 व 2005 का विश्लेषण किया गया है।

4.7 अभ्यास कार्य

- शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु पाठ्यचर्या का अर्थ क्या है? विवेचना कीजिए।
- पाठ्यचर्या और पाठ्यवस्तु में अन्तर स्पष्ट कीजिये।
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-1975 में शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य की विवेचना कीजिये।
- NCF 2005 की शैक्षिक नीतियों का वर्णन कीजिये।
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-1975 के अनुसार कक्षा 6 वीं से 8 वां तक के लिए किन-किन विषयों को अनुशासा की थी?
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-1975 के आकलन के तौर-तरीके की विवेचना कीजिये।
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-1988 के पाठ्यवस्तु संगठन का वर्णन कीजिये।
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2000 का अपने शब्दों में विश्लेषण कीजिए।
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 की वर्तमान सन्दर्भ में विवेचना कीजिये।
- शिक्षा बिना बोझ के (लर्निंग विदाउट बर्डन) ने पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तकों की रूपरेखा में परिवर्तन लाने की क्या सिफारिश की?
- स्कूली पाठ्यचर्या-2005 में किन-किन विषय क्षेत्रों का सुझाव दिया गया है?
- NCF-2005 के भाषा नीतियों का उल्लेख कीजिये।

4.8 चर्चा के बिन्दु

4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- गुप्ता, एस.पी.एवं गुप्ता, अलका (2005). *भारत में शिक्षा प्रणाली का विकास*, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 11, यूनिवर्सिटी रोड।
- त्यागी, गुरसरन दास (2011). *प्रारंभिक शिक्षा*, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा: संजय पैलेस, ज्योती ब्लाक।
- रा.शै.अ.प्र.प.(1975). *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-1975*, नई दिल्ली राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद, श्री अरबिन्दो मार्ग।
- रा.शै.अ.प्र.प.(1988). *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-1988*, नई दिल्ली राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद, श्री अरबिन्दो मार्ग।
- रा.शै.अ.प्र.प.(2000). *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2000*, नई दिल्ली राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद, श्री अरबिन्दो मार्ग।
- रा.शै.अ.प्र.प.(2005). *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005*, नई दिल्ली राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद, श्री अरबिन्दो मार्ग।

